फ़ानी बदायूनी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली।

भारतीय साहित्य के निर्माता

फ़ानी बदायूनी

लेखक

मुग्नी तबस्सुम

अनुवादक

जानकी प्रसाद शर्मा

साहित्य अकादेमी

क्रम

पहला भाग

जीवन-वृत्त

घर और घराना

शौकत अली खॉ फ़ानी बदायूनी मूल से पठान थे। उनका वंशगत सम्बन्ध यूसुफ़ ज़ई अफ़गानों के क़बीले उमर ख़ील की शाखा बोचा ख़ील से था। फ़ानी के पड़दादा नवाब अकबर अली खाँ, तहसीलदार थे। रमज़ानपुर, सौतपुर, हाजीपुर, ककराला और रौज़ा-ए-इख़्लास ख़ान के आस-पास उनकी ज़मींदारी थी। बदायूँ के महल्ले बराहमपुर में उनकी बड़ी हवेली थी जो 'महल' के नाम से मशहूर थी। फ़ानी के दादा ग़ुलाम नबी ख़ाँ बसौली के तहसीलदार थे। उनकी जायदाद का बहुत बड़ा भाग 1857 के विद्रोह की भेंट चढ़ गया था। जो भाग बच रहा वह उनकी मृत्यु के बाद उनकी संतान में बंट गया। गुलाम नबी खाँ की छह संतानें थीं। दो लड़के थे – विलायत अली खाँ और शुजाअत अली ख़ाँ, फ़ानी के पिता थे। विद्रोह के बाद ख़ानदानी पद-प्रतिष्ठा का पतन हो चुका था। शुजाअत अली खाँ ने विवश होकर पुलिस की नौकरी कर ली। वेतन के अलावा जायदाद से भी कुछ आय हो जाती थी। मितव्ययिता से काम लेकर उन्होंने ख़ानदानी मान-प्रतिष्ठा का भरम बनाये रखा। फ़ानी के शब्दों में, "अपनी सारी ज़िंदगी शराफ़त, दयानत, गैरत, जुरअत के साथ गुज़ारी थी......"

फ़ानी की माँ मुसाहिब बेग़म, नवाब बशारत खाँ की नातिन थीं जो फ़ानी के पड़दादा नवाब अकबर अली खॉ के रिश्ते के भाई थे। नवाब बशारत ख़ाँ बड़े जागीरदार थे। उनकी जागीर में लगभग दो सौ गाँव थे। वे सेनहा के सूबेदार थे जो आंवला और बरेली के बीच स्थित है। यहाँ एक क़स्बा बशारत गंज उन्हीं के नाम से जाना जाता है।

जन्म, जन्म-स्थान और वातातरण

बदायूँ संयुक्त प्रांत का ऐसा शहर था जिसने कई प्रतिभाओं को जन्म दिया। इसी शहर के एक क़स्बे इस्लाम नगर में 13 सितम्बर, 1879 ई. को शौकत अली ख़ाँ फ़ानी का जन्म हुआ, जहाँ उनके पिता नौकरी करते थे। बदायूँ के नामकरण के बारे में कहा जाता है कि राजा महिपाल ने यहाँ पाठशालाओं की प्रचुरता देखते हुए इसका नाम 'बेदामूं' रखा जो समय के साथ बदलते हुए बदायूँ हो गया। मुसलमानों के युग में भी यहाँ बड़ी-बड़ी दर्सगाहें क़ायम की गईं। देश के विभिन्न भागों और देश से बाहर दूर-दराज़ इलाक़ों से लोग विद्यार्जन के लिए यहाँ आते

थे। विद्वानों के अलावा धर्मवेत्ताओं और औलियाओं के कारण भी इस स्थान का महत्व बढ़ गया था, जिन्होंने इसी मिट्टी से जन्म लिया या बाहर से आकर इसे अपना वतन बनाया।

बदायूँ लम्बे समय तक तुर्कों, मुग़लों और फिर रोहिलों के अधीन रहा। 1774 ई. जब शुजाउद्दौला ने अंग्रेज़ों से मिलकर रोहिलों को पराजित किया, तब यह शहर अवध सल्तनत का हिस्सा बन गया। 1801 ई. में अवध के नवाब ने ख़राज (चौथ) के रूप में बदायूँ को ईस्ट इंडिया कंपनी के हवाले कर दिया। इस घटना से बदायूँ की संस्कृति और सामाजिक वातावरण को बहुत क्षति पहुँची। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद बदायूँ अंग्रेज़ों की प्रतिशोधात्मक कार्यवाहियों का शिकार हुआ और यहाँ आर्थिक संकट के साथ-साथ नैतिक ह्रास की प्रक्रिया शुरू हो गयी। पुराने मक्तब उजड़ गये, नई शिक्षा की रोशनी फैली नहीं थी। अतएव समाज में भ्रांति और अज्ञानता का बोल-बाला होने लगा। एक सरकारी हाईस्कूल था जिसमें अरबी और फ़ारसी के साथ अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती थी। लेकिन आम तौर पर मुसलमान अपनी संतान को अंग्रेज़ी पढ़ाना पसंद नहीं करते थे।

फ़ानी ने इस रूढ़िवादी वातावरण में आँख खोली। घर में पहले जैसी संपन्नता नहीं रही थी। फ़ानी के पिता शुजाअत अली खॉ नौकरी करने पर विवश हुए। वे पुलिस के थानेदार थे। वेतन के अलावा पैतृक जायदाद से भी कुछ आय हो जाती थी। फ़ानी ने अपनी आपबीती में लिखा है "छोटी सी आमदनी के सहारे मरहूम ने अपनी सारी ज़िंदगी शराफ़त, दयानत, ग़ैरत और जुरअत के साथ गुज़ारी है।" शुजाअत अली ख़ाँ ने मितव्ययिता के साथ अपनी ख़ानदानी मान-प्रतिष्ठा का मरम इस प्रकार बनाये रखा कि लोगों को प्रतीत होता था कि वे बहुत संपन्न व्यक्ति थे। आस्था की दृष्टि से वे ग़ैर मुकल्लद[1] थे। स्वभाव से काफ़ी कठोर थे।

शिक्षा, काव्य-रचना का आरम्भ

फ़ानी जब पाँच वर्ष के हुए तो पिता ने उनके लिए घर पर मक्तब जमा दिया। क़ुरान शरीफ़ ख़त्म करने के बाद मौलवी वहीदुल्लाह ख़ाँ साहब से फ़ारसी पढ़ी। मौलवी वहीदुल्लाह खाँ, शुजाअत अली ख़ाँ से निकटता रखते थे। वे सरकारी हाई स्कूल, बदायूँ में अध्यापक थे। शुजाअत अली ख़ाँ अंग्रेज़ी शिक्षा के विरुद्ध थे और समझते थे कि इससे आस्थाएं विकृत होती हैं और मज़हब के प्रति उदासीनता का भाव पैदा होता है। मौलवी वहीदुल्लाह ख़ाँ ने उनकी ग़लतफ़हमी दूर की और इस बात पर राज़ी किया कि वे फ़ानी को अंग्रेज़ी पढ़ायें। उन्हीं के स्कूल के एक

(1) वह मुसलमान जो चार इमामों में से किसी की पैरवी न करे।

अध्यापक मुंशी फ़ैज़ुल्लाह साहब फ़ानी को अंग्रेज़ी पढ़ाने लगे। मक्तब की तालीम ख़त्म होने के बाद वहीदुल्लाह ख़ाँ साहब के आग्रह पर फ़ानी को गवर्नमेंट हाई स्कूल बदायूँ में प्रवेश दिला दिया। यहाँ से 1897 ई. में फ़ानी ने एंट्रेंस की परीक्षा पास की। वे उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। उन दिनों बदायूँ में कोई कॉलेज नहीं था। इसलिए बरेली चले गये। बरेली कॉलेज में दर्शन और अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया और 1901 ई. बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। उस समय फ़ानी अपने शहर में दूसरे या तीसरे ग्रेजुएट थे।

मक्तब की तालीम के ज़माने में ही फ़ानी को शायरी से लगाव पैदा हो गया था। उन्होंने विभिन्न शायरों के दीवान पढ़ डाले थे और ग्यारह वर्ष की अवस्था में शे'र कहने लगे थे। सृजन-कर्म के प्रति फ़ानी की अभिरुचि जगाने में उनके उस्ताद वहीदुल्लाह ख़ाँ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, जो शायर थे और उर्दू के अलावा फ़ारसी में भी शे'र कहते थे।

शुजाअत अली ख़ाँ को जब बेटे की शे'रगोई का पता चला तो बहुत नाराज़ हुए और उनके लिखे हुए पन्ने जला दिये। इसके बाद भी फ़ानी पिता से छुपाकर शे'र कहते रहे। बरेली कॉलेज पहुँचे तो उन्हें कुछ स्वतंत्रता मिली। वे कॉलेज के जलसों और दोस्तों की महफ़िलों में शे'र सुनाने लगे। धीरे-धीरे शायर के रूप में उनकी ख्याति कॉलेज की सीमाओं को पार करके दूसरे शहरों तक पहुँच गई।

1902 ई. में उन्हें अंजुमन उर्दू-ए-मुअल्ला अलीगढ़ के सालाना जल्से में आमंत्रित किया। फ़ानी ने उर्दू भाषा पर एक नज्म़ सुनाई जो विशेष रूप से इस जल्से के लिए लिखी गयी थी। इस अवसर पर मीर महदी 'मजरूह' की अध्यक्षता में एक तरही मुशायरा भी आयोजित किया गया था। फ़ानी ने भी तरही मुशायरे में अपनी ग़ज़ल पेश की। जब वे इस शे'र पर पहुँचे –

> नज़्र करने लाये थे हम जल्वए–जानां को दिल,
> वो भी शर्फ़े–कशमकशहाए–तमाशा हो गया।

तो 'मजरूह' ने फिर से पढ़ने की इच्छा व्यक्त की और बहुत सराहा। इसी ज़माने में फ़ानी अलीगढ़ आंदोलन के समीप आये। वे सर सैयद अहमद ख़ाँ और 'हाली' से प्रभावित थे। फ़ानी के उस दौर के कलाम में इसके प्रभाव परिलक्षित होते हैं। उन्हीं दिनों फ़ानी ने शेक्सपियर के सुखांत नाटक 'मच एडो अबाउट नथिंग' का अनुवाद किया और मिल्टन की कविता 'कॉमस' (Comus) को उर्दू में अनूदित किया।

विवाह, नौकरी, अध्यापन-व्यवसाय से जुड़ाव

कहा जाता है कि बचपन में ही फ़ानी की सगाई उनके ताऊ की लड़की से तय हो गई थी। वे एक दूसरे से प्रेम करते थे। फ़ानी के पिता और ताऊ के बीच पारिवारिक संपत्ति को लेकर मन-मुटाव पैदा हो गया था। इस विवाद ने तूल पकड़ा। ताऊ ने सगाई तोड़कर लड़की की इच्छा के विरुद्ध किसी और जगह उसकी शादी कर दी। कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी। फ़ानी के मन को गहरा आघात पहुँचा और अंतिम सांस तक वे उसकी यादों को सीने से लगाये रहे। कुछ अर्सा गुज़र जाने के बाद फ़ानी के माता-पिता ने उन्हें शादी के लिए विवश किया। और वे ईकरी क़स्बे (ज़िला बदायूँ) के ज़मींदार इंतज़ार अली ख़ाँ की बेटी ज़मानी बेगम को ब्याह कर ले आये।

दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने के बाद फ़ानी को आजीविका की चिंता हुई। प्रयास करने के बाद वज़ीराबाद हाई स्कूल में सैकंड मास्टर के रूप में उनकी नियुक्ति हो गई। फ़ानी की प्रकृति कुछ ऐसी थी कि वे नौकरी की जकड़बंदियों में नहीं रह सकते थे। वज़ीराबाद का माहौल भी उन्हें पसंद नहीं आया। कुछ महीने सेवा करने के बाद वे मुक्त होकर बदायूँ चले आये और फिर नहीं गये। इसी ज़माने में फ़ानी के मित्र मौलवी अल्ताफ़ हुसैन इस्लामिया हाई स्कूल, इटावा के हैड मास्टर हो गये थे। उन्होंने फ़ानी से आग्रह किया कि वे इटावा चले आयें। उन्होंने स्कूल के सचिव मौलवी बशीर उद्दीन साहब से सिफ़ारिश करके फ़ानी की नियुक्ति करा दी। मौलवी अल्ताफ़ हुसैन ने हर प्रकार से फ़ानी की भावनाओं का ध्यान रखा। फ़ानी की नियुक्ति करा दी। मौलवी अल्ताफ़ हुसैन ने हर प्रकार से फ़ानी की भावनाओं का ध्यान रखा। फ़ानी बड़ी निष्ठा और प्रसन्नता के साथ अध्यापन-कार्य करते रहे। कुछ समय बाद उन्हें सब डिप्टी इंस्पैक्टर ऑफ़ स्कूल्ज़ बनाकर गोंडा भेज दिया गया। यहाँ फ़ानी ज़्यादा दिन न रह सके और त्याग-पत्र देकर बदायूँ चले आये।

क़ानून की शिक्षा, लखनऊ में वकालत, बदायूँ को वापसी, माता-पिता का निधन

शुभचिंतकों ने फ़ानी के लिए किसी बेहतर नौकरी की कोशिशें कीं। सुपरिंटेंडेंट पुलिस के पद पर उनकी नियुक्ति हो रही थी लेकिन उनके पिता ने परामर्श दिया कि वे क़ानून की पढ़ाई करके वकालत करें। अपने अनुभव के आधार पर वे पुलिस की नौकरी को पसंद नहीं करते थे। अतएव फ़ानी 1906 ई. में अलीगढ़ गये और एल. एल. बी. में प्रवेश लिया। वे 1906 से 1908 ई. तक अलीगढ़ में रहे। एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने वकील हाईकोर्ट की परीक्षा

उत्तीर्ण की और लखनऊ जाकर वकालत शुरू की। लखनऊ जाने का कारण यह था कि उन दिनों बदायूँ में जजी क़ायम नहीं हुई थी। चंद ही दिनों में उनकी वकालत चल निकली और प्रथम पंक्ति के वकीलों में उनकी गिनती होने लगी। 1913 ई. में बदायूँ में सेशन की अदालत क़ायम हुई तो फ़ानी बदायूँ चले आये और वहीं प्रैक्टिस करने लगे। 1915 में उनकी माँ का देहांत हुआ। कुछ समय बाद उनके पिता गंभीर रूप से बीमार हुए और जुलाई 1917 ई. में उनका निधन हो गया। इन सतत आपदाओं से फ़ानी कुछ हताश हो गये। माता-पिता की बीमारी के दौरान उनकी वकालत का काम प्रभावित हुआ था। अब इस व्यवसाय से उनका नाममात्र का सम्बन्ध रह गया। आय भी घट गयी और साहूकार से क़र्ज़ लेने की नौबत आ पहुँची।

1906 से 1917 ई. तक फ़ानी शायरी से बड़ी हद तक दूर रहे। अलीगढ़ प्रवास के दौरान उनकी शायरी की पाण्डुलिपि चोरी हो गयी। इस कारण उनका मन कुछ उचाट हो गया था। वकालत की परीक्षा पास कर लेने के बाद वे अपने व्यवसाय में व्यस्त हो गये। उनके पिता शायरी को नापसंद करते थे। वे जब तक जीवित रहे फ़ानी ने बदायूँ के किसी मुशायरे में शिरकत नहीं की। माता-पिता की मृत्यु के बाद मित्रों के आग्रह पर वे महफ़िलों में शरीक होने लगे। इस प्रकार उनकी शायरी की दोबारा शुरुआत हुई।

दोबारा लखनऊ में वकालत, साहित्यिक रुचियाँ

फ़ानी अपने पिता के आग्रह पर लखनऊ से बदायूँ चले आये थे। जब उनकी वकालत की नाव डूबने लगी और क़र्ज़ का बोझ बढ़ता चला गया तो क़िस्मत आज़माने के लिए उन्होंने दोबारा लखनऊ की राह ली। कहा जाता है कि बदायूँ छोड़ने का एक कारण कुछ आत्मीयजनों का व्यवहार भी था। लखनऊ पहुँचकर वे नज़ीराबाद में सवा सौ रुपये माहवार किराये पर एक कोठी लेकर रहने लगे। लखनऊ में उन दिनों साहित्यिक गतिविधियाँ चरम सीमा पर थीं। अज़ीज़, सफ़ी, चकबस्त, आरजू और साक़िब जैसे उस्तादे-सुखन वहाँ मौजूद थे। इनके अलावा बहुत से नौजवान शायर भी इकट्ठा हो गये थे। जिनमें यास, जोश, असर, जिगर, आशुफ़्ता, सिराज और क़दीर के नाम उल्लेखनीय हैं।

फ़ानी लखनऊ वकालत के उद्देश्य से गये थे लेकिन वह लगन और उत्साह उनमें बाक़ी नहीं रहा था। अपने व्यवसाय से ज़्यादा वे शे'र-ओ-सुख़न की महफ़िलों में रुचि लेने लगे। जीवन के कटु अनुभवों और वंचनाओं ने उनकी जीवन-शैली और दृष्टिकोण को बदल कर रख दिया। नियतिवादी दर्शन की ओर उनका झुकाव हो गया और उनका यह चिंतन एक नयी शैली में अभिव्यक्ति पाने लगा। उनका

शे'र सुनाने का ढंग भी विशिष्ट और प्रभावोत्पादक था। वे बहुत दर्दीली आवाज़ में शे'र पढ़ते थे। दो चार मुशायरों के बाद ही उनकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच गयी। एक तरही मुशायरे में फ़ानी ने अपनी यह ग़ज़ल पेश की–

> *मआल-ए-सोज़-ए-ग़महा-ए-निहानी[1] देखते जाओ,*
> भड़क उट्ठी है शम्अ-ए-ज़िंदगानी देखते जाओ।

तो श्रोता आपे से बाहर हो गये। यह ग़ज़ल समूचे भारत में मशहूर हुई और हर जगह गली कूचों में इसके शे'र गाये जाने लगे। अब फ़ानी लखनऊ के मुशायरों की जान बन गये। वकालत से उनकी दिलचस्पी कम हो गयी। जोश मलीहाबादी के शब्दों में, "उनका ज़ौके सुखन[2] उभरता और उनका शीराज़ा-ए-वकालत बिखरता चला गया और इस ग़रीब को पता भी न चल सका कि मेरी मईशत[3] का धारा एक बड़े रेगिस्तान की जानिब बढ़ता जा रहा है।"

फ़ानी के ख़र्च आमदनी से कहीं ज़्यादा थे। वे पैतृक संपत्ति की ज़मानत पर क़र्ज़ लेकर अपना काम चलाते थे।

बदायूँ को वापसी

लखनऊ में तीन वर्ष बिताने के बाद फ़ानी कुछ आत्मीय जनों के आग्रह पर बदायूँ चले गये। फ़ानी के अलीगढ़ के साथी ख़ाँ साहब मुजफ़्फ़र अली ख़ाँ म्युनिस्पल बोर्ड के सेक्रेटरी थे। वे चाहते थे कि फ़ानी आजीविका की चिंता से मुक्त होकर शायरी के प्रति समर्पित हो जायें। उन्होंने कुछ वकीलों से, जो कि फ़ानी के क़द्रदान थे, यह तय किया कि वे अपनी आय का एक भाग फ़ानी को प्रदान किया करें। लेकिन फ़ानी ने इस तरह चंदे पर गुज़ारा करना पसंद नहीं किया। फिर वे अपने मित्र मुंशी मनमोहन सहाय के निमंत्रण पर बरेली चले गये और चंद महीने वहाँ रहकर वकालत की लेकिन बरेली में फ़ानी का जी नहीं लगा और बदायूँ लौट आये। बदायूँ निवास के दौरान फ़ानी ने अपने मित्र और 'नक़ीब' मासिक के संपादक वहीद अहमद साहब के आग्रह पर अपना दीवान संकलित किया जो उन्हीं की प्रेस से 1921 ई. में प्रकाशित हुआ।

तीसरी बार लखनऊ में, तक्क़न जान से मेल-जोल

कुछ अर्सा बदायूँ में रहने के बाद फ़ानी फिर लखनऊ रवाना हुए। इस बार अमीनाबाद के ऊपरी हिस्से में दो कमरे सौ रुपये मासिक किराये पर लिये। एक

---

(1) भीतर छुपी हुई ग़म की आग की परिणति

(2) शायरी की रुचि (3) आजीविका

कमरा रिहायश के लिए रखा और दूसरे में दफ़्तर खोल लिया। अब भी वकालत और शायरी की वही रफ़्तार बरक़रार रही। कहा जाता है कि लखनऊ की तवायफ़ तक़्क़न जान से फ़ानी का कुछ रागात्मक सम्बन्ध रहा। तक़्क़न जान फ़ानी के यहाँ आया करती थी वह राजा साहब मेहमूदाबाद की कृपा-पात्र थी। राजा साहब उसे तीन सौ रुपये मासिक देते थे। तक़्क़न जान का झुकाव फ़ानी की ओर था। कभी नौकर न होता तो घर के छोटे-मोटे काम और पकवान भी कर दिया कर देती थी। तक़्क़न जान चाहती थी कि फ़ानी उससे निकाह कर लें। उसने एक लाख रुपये की पेशकश भी की थी कि वे अपने क़र्ज़ों से छुटकारा पा लें। फ़ानी ने यह धनराशि लेना स्वीकार नहीं किया। कुछ दिनों बाद तक़्क़न जान की मृत्यु हो गयी और इस प्रेम की दु:खद परिणति हुई। अब लखनऊ में ठहरना फ़ानी के लिए दूभर हो गया था। वे बदायूँ चले आये। क़र्ज़ का बोझ तीस-बत्तीस हज़ार तक पहुँच गया। क़र्ज़दाता ने अदालत में नालिश करके डिग्री ले ली। फ़ानी ने विवश होकर पैतृक जायदाद बेच दी। क़र्ज़ अदा करने के बाद जो धनराशि बची उसे खुलकर ख़र्च कर दिया और फिर नौबत फ़ाके तक पहुँच गयी।

इटावा को प्रस्थान, वकालत, नूरजहाँ से प्रेम

मौलवी अल्ताफ़ हुसैन को इन हालात का पता चला तो उन्हें इटावा बुला लिया। वे मुहल्ला नौरंगाबाद में एक मकान किराये पर लेकर रहने लगे और दीवानी अदालत में प्रैक्टिस शुरू कर दी। वकालत के काम से उन्हें दिलचस्पी नहीं रही थी। लेकिन इसके बिना गुज़र-बसर की कोई सूरत भी न थी। वे मुकदमें की कोई ख़ास तैयारी नहीं करते थे। मुहर्रिर, मुवक्किल से फ़ीस तय करते। आमदनी उन्हीं के पास जमा रहती और ख़र्च भी वे ही चलाते थे। अक्सर यह होता कि पैसा ख़त्म हो जाता और फ़ानी को कष्ट उठाना पड़ता। इटावा के मुंसिफ़ बाबू लछमन प्रसाद शे'रो-सुख़न में अच्छी रुचि रखते थे और फ़ानी के प्रशंसक थे। वे अधिकांश अदालती कमीशन उन्हें देने लगे जिससे फ़ानी की आर्थिक कठिनाइयाँ काफ़ी हद तक दूर हुईं।

इसी ज़माने में यास यगाना चंगेज़ी इटावा आ गये थे और इस्लामिया हाई स्कूल में नौकरी करने लगे थे। बेदम शाह पारसी इटावा में ही रहते थे। जिगर मुरादाबादी मैनपुरी में थे और इटावा आते रहते थे। अक्सर शे'रो-सुख़न की महफ़िलें सजती रहतीं। साल में दो-एक बार बड़े पैमाने पर तरही मुशायरे आयोजित किये जाते जिनमें लखनऊ और दूसरी जगह के शायर भी हिस्सा लेते और कई शायर अपनी ग़ज़लें डाक से भिजवा देते थे। इन मुशायरों के लिए फ़ानी ने अनेक ग़ज़लें कहीं जो 'बाक़ियात-ए-फ़ानी' में संगृहीत हैं।

फ़ानी की मशहूर ग़ज़ल –

दुनिया मेरी बला जाने महंगी है या सस्ती है,
मौत मिले तो मुफ़्त न लूँ, हस्ती की क्या हस्ती है।

इटावे की ही एक महफ़िल की यादगार है जो फ़ानी ने यगाना की इस ग़ज़ल पर बहर की तब्दीली के साथ कही थी –

कारगाह-ए-दुनिया की नेस्ती में हस्ती है,
इस तरफ़ उजड़ती है, एक सिम्त बसती है।

इटावा में फ़ानी के निवास-स्थान के पास नूरजहाँ नामक एक नौजवान ख़ूबसूरत तवायफ़ रहती थी। गाती भी ख़ूब थी। एक गाने की महफ़िल में अपने दोस्तों बाबू लछमन प्रसाद और महमूद इलाही के आग्रह पर फ़ानी भी शरीक हुए। पहली भेंट में ही नूरजहाँ से हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। मेल-जोल बढ़ता गया। अब नूरजहाँ फ़ानी के घर आने लगी। धीरे-धीरे उसने घर का कारोबार भी संभाल लिया। वकालत से जो कुछ आय होती, फ़ानी उसके हवाले कर देते। और वही उनका ख़र्च चलाती। कुछ दिनों बाद हालात ने पलटा खाया। बाबू लछमन प्रसाद का तबादला आगरा हो गया जिनकी वजह से फ़ानी को मुकदमें और कमीशन मिला करते थे। कहा जाता है कि प्रतिद्वंद्वी प्रेमी ने उनके प्रेम सम्बंधों में विष घोल दिया। इस प्रकार फ़ानी के जीवन में सुख-शांति के ये दिन पानी के बुलबुले के समान साबित हुए। बाबू लछमन प्रसाद की जगह बाँदा के सेशन जज तुफ़ैल अहमद का तबादला इटावा कर दिया गया। मौलवी तुफ़ैल अहमद, फ़ानी के हमवतन और सहपाठी थे। फ़ानी को यह गवारा नहीं था कि उनके इज्लास पर वकील की हैसियत से हाज़िर हों। उधर बाबू लछमन प्रसाद का यह आग्रह था कि फ़ानी आगरा आ जायें। इटावा से फ़ानी का दिल उठ गया था। अभी वे निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि कहाँ जायें और क्या करें !

हैदराबाद की यात्रा

कुछ दिनों के लिए वे आगरा गये और वहाँ के हालात का जायज़ा लिया। आगरे से अपने वतन बदायूँ गये और फिर हैदराबाद का रुख़ किया। जिस दिन वे हैदराबाद पहुँचे, किसी सूत्र से महाराजा किशन परशाद को उनके आगमन की सूचना मिल गयी। उन्होंने कार भेजकर फ़ानी को आमंत्रित किया। विभिन्न साहित्यिक विषयों पर चर्चा होती रही। फिर महाराजा फ़ानी से कलाम सुनाने की फ़र्माइश की। महाराजा ने एक कार फ़ानी की सवारी के लिए दी ताकि वे आराम के साथ हैदराबाद में घूम-फिर सकें और यह इच्छा व्यक्त की कि वे जब तक हैदराबाद

में हैं, हर शाम मुलाक़ात के लिए आ जाया करें। फ़ानी ग्यारह दिन हैदराबाद में रहे। वे महाराजा के सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। उन दिनों के अनुभवों को लिपिबद्ध करते हुए फ़ानी ने अपने लेख 'बयाद-ए-शाद' में लिखा है –

> "मैंने प्रशंस्य की सेवा में पहुँकर अपने दर्द की दवा पाई। आत्मीयता और सौहार्द के भूखे को आहार मिला। अंततः मैं जब प्रशंस्य से विदा हुआ तो किसी का यह शे'र ज़रूरी परिवर्तन के साथ मेरी ज़बान पर था–
>
> अज़ दर-ए-शाद चे गोयम ब चे उनवां रफ़्तम,
> हमा दर्द आमदः बूदम हमा दरमां रफ़्तम।"[1]

एक वर्ष बाद 1927 में महाराजा के निमंत्रण पर फ़ानी दोबारा हैदराबाद आये। महाराजा ने बहुत आवभगत की। कुछ दिन बाद फ़ानी ने विदाई की अनुमति चाही। महाराजा की इच्छा थी कि वह कुछ दिन और हैदराबाद में रहें लेकिन अनेक विवशताओं के रहते हुए उन्हें अपने वतन लौटना आवश्यक था। उन्होंने वायदा किया कि वे अपनी व्यस्तताओं से निवृत्त होकर हैदराबाद आ जायेंगे। फिर इसके बाद वे बदायूँ चले गये।

आगरा को प्रस्थान, वकालत, साहित्यिक गतिविधियाँ, 'तस्नीम' मासिक पत्रिका का प्रकाशन

फ़ानी आगरा और हैदराबाद में अपने स्थायी निवास की संभावनाओं का जायज़ा ले चुके थे। महाराजा प्रसाद उन दिनों सदर-ए-आज़म नहीं रहे थे, अन्यथा यह संभव था कि वे फ़ानी को कहीं नौकरी दिला देते। महाराजा सिर्फ़ यह कर सकते थे कि वे अपने निजी कोश से एक वृत्ति निश्चित कर देते। इससे फ़ानी के तमाम खर्चों की पूर्ति नहीं हो सकती थी। आगरे में बाबू लछमन प्रसाद सिविल जज के संरक्षण में वे वकालत का काम जारी रख सकते थे। यही कारण था कि उन्होंने हैदराबाद की तुलना में आगरा को प्राथमिकता दी। वे 1928 ई. में स्थायी निवास के इरादे से आगरा पहुँचे और टीला मुन्नालाल (आगरे के मशहूर शू मार्केट से आगे तिराहे के पास) में ठेकेदार अब्दुल करीम खाँ का मकान किराये पर ले लिया। मर्दाना हिस्से के एक बड़े कमरे में अपना दफ़्तर जमा लिया। यही उनकी बैठक भी थी। इटावा की तरह यहाँ भी उनकी वकालत का काम चल पड़ा। उनकी दिनचर्या यहाँ भी इटावा की भाँति ही रही। मुवक्किलों से सिर्फ़ सुबह के समय

---

(1) मैं 'शाद' के दरवाजे से किस तरह वापस हो रहा हूँ ? सिर से पांव तक दर्द बना हुआ आया था और सिर से पांव तक राहत बन कर लौट रहा हूँ।

मिलते फिर कोर्ट चले जाते। शामें मित्रों के लिए समर्पित रहतीं। उनके विशेष मित्रों में मख़्मूर अकबराबादी, मानी जायसी, लाम अहमद, हाफ़िल इमामुद्दीन के अलावा पंडित परमेश्वरी नाथ रैना वकील और बिंदेश्वरी प्रसाद वकील शामिल थे। नज्म आफ़ंदी, अख़जर अकबराबादी, दिलगीर शाह और आगरे के दूसरे शायरों से भी उनके अच्छे सम्बन्ध थे। सीमाब साहब से शुरू में मुलाकातें रहीं लेकिन कुछ दिनों बाद दिलों में रंजिश पैदा हो गयी।

फ़ानी दर्शन के विद्यार्थी रह चुके थे। तसव्वुफ़ का भी गंभीर अध्ययन किया था। आगरे के वैचारिक सत्संग ने उनकी इस रुचि को और बढाया। दूसरी ओर नृत्य-संगीत की महफ़िलों से उनका जुड़ाव बदस्तूर बरक़रार रहा। आगरे की तवायफ़ सितारा उनकी विशेष कृपा-पात्र थी। वह मयकश अकबराबादी के मकान के सामने एक कोठे पर रहती थी। सितारा बहुत अच्छा गाती थी। उसके साथ जो आदमी रहता था, उसे शे'र कहने का शौक था। ये दोनों कभी कभार इजाज़त लेकर मयकश अकबराबादी के यहाँ चले जाते। यहीं सितारा से फ़ानी की भेंट हुई। उसे फ़ानी का बहुत-सा कलाम याद था। पहली मुलाक़ात में जब फ़ानी ने सितारा से गाने का आग्रह किया तो उसने फ़ानी ही की एक ग़ज़ल सुनाई, जो आम फ़हम नहीं थी और उसका गाना भी आसान नहीं था। फ़ानी उसकी शारीरिक सुंदरता और कलात्मक दक्षता के साथ उसकी साहित्यिक रुचि से बहुत प्रभावित हुए। सितारा से फ़ानी की मुलाकातें सीमित ही रहीं लेकिन आगरा छोड़ने के बाद भी उसकी स्मृतियाँ उसके मन में डेरा डाले रहीं। हैदराबाद जाने के बाद फ़ानी ने हाफ़िज इमामुद्दीन को एक छंदोबद्ध पत्र लिखा था। एक शे'र में नूरजहाँ और सितारा की ओर संकेत किये हैं –

गरचे थी सुब्ह-ए-आगरा बेनूर,
ओज पर था मगर सितारा-ए-शाम।

बाबू लछमन प्रसाद के कारण फ़ानी को बड़े-बड़े कमीशन मिल जाया करते थे। उनकी वकालत भी अच्छी चल रही थी। इस कारण दूसरे सहकर्मी फ़ानी से ईर्ष्या करने लगे। कुछ लोगों ने लछमन प्रसाद के ख़िलाफ़ सरकार में शिकायत कर दीं परिणामस्वरूप उनका तबादला करा दिया गया। इस घटना से फ़ानी बहुत क्षुब्ध हुए। वकालत में उनकी रुचि नाम मात्र के लिए रह गयी। वे चाहते थे कि वकालत छोड़कर कोई दूसरा काम करें। फ़ानी के एक मित्र ज़ियाए-अब्बास हाशमी ग्वालियर में रहते थे। उन्हें फ़ानी की दशा का पता चला तो ग्वालियर में उनके लिए कोई नौकरी ढूँढ़नी शुरू कर दी। संयोग से महाराजा ग्वालियर के उर्दू शिक्षक का स्थान रिक्त हुआ। सर सुलतान अहमद महाराजा की शिक्षा-दीक्षा की देख-रेख करते थे। ज़िया-ए-अब्बास हाशमी ने राज-शिक्षक के लिए फ़ानी का नाम सुझाया।

तो सर सुल्तान अहमद ने फ़ानी से मिलने की इच्छा व्यक्त की। ज़िया-ए-अब्बास हाशमी के कहने पर फ़ानी ग्वालियर आये। महाराजा और सर सुल्तान अहमद से भेंट की। जब उन्हें मालूम हुआ कि उर्दू राज-शिक्षक का वेतन अंग्रेज़ी के राज-शिक्षक से कम है तो उन्होंने यह शर्त रखी कि जो सुविधाएँ अंग्रेज़ी अध्यापक को दी जाती है, वही मुझे दी जाये। उनकी यह शर्त स्वीकार नहीं की गयी और वे आगरा चले आये। आगरा लौटकर उन्होंने मानी जायसी और मख़्मूर अकबराबादी के साथ मिलकर एक साहित्यिक पत्रिका 'तस्नीम' मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया। 'तस्नीम' का प्रवेशांक जनवरी, 1931 में निकला। संपादकीय में फ़ानी ने बताया कि पत्रिका के प्रकाशन की योजना किस तरह बनी –

"इस साहित्यिक पत्रिका के प्रकाशन की योजना पिछले वर्ष के अंतिम क्षणों में बनी। इस योजना को व्यावहारिक रूप देने की प्रक्रिया में अनेक उतार-चढ़ावों से गुज़रना पड़ा। क़दम बढ़ा और ठहरा, ठहरा और बढ़ा। कभी विचार में क्रिया और कभी क्रिया में मात्र विचार की अनुभूति हुई; यहाँ तक कि ईश्वर की कृपा से एक चरम बिन्दु पर पहुँच कर यह भ्रम दूर हो गया। विचार और क्रिया में सामंजस्य स्थापित हो गया। लेकिन इस बाह्य सामंजस्य से न विचार ही शेष रहा और न क्रिया। ये दोनों वास्तविकताएं एक तीसरे यथार्थ में परिवर्तित हो गयी, जिसे 'तस्नीम' के नाम से जाना जाता है और जिसने एक साहित्यिक पत्रिका का रूप धारण कर लिया।"

आगे चलकर पत्रिका की नीति के बारे में लिखते हैं –

"शायरी और गद्य की रचनाओं के चयन में स्तर और गुणवत्ता का कठोरता के साथ ध्यान रखना हम सिर्फ़ अपना महत्तम कर्तव्य ही नहीं समझते हैं बल्कि इस दायित्व को निभाने के मार्ग में जो बाधाएँ आया करती हैं, उनका कुछ सीमा तक अनुमान कर लेने के बाद, हमने अपनी पूरी शक्ति के साथ उनका मुकाबला करने का निश्चय कर लिया है....हमारा मानदंड केवल सौष्ठव और सुरुचिसंपन्नता है, चाहे उसका सम्बन्ध भाव से हो या भाषा से....।"

'तस्नीम' में फ़ानी ने 'बयाज़-ए-फानी' स्तंभ के अंतर्गत अपनी पसंद के चुने हुए शे'रों का सिलसिला शुरू किया था। यह चयन ज़्यादातर फ़ारसी शायरों के कलाम से होता था।

फ़ानी ने देश के प्रतिष्ठित शायरों और लेखकों से 'तस्नीम' के लिए रचनाएं आमंत्रित कीं। जोश मलीहाबादी से भी उनका कलाम मांगा तो जोश ने जवाब में लिखा कि "तुम कमबख़्त तस्नीम-वस्नीम खेल रहे हो, मुल्क में आग लगी हुई है। अपनी शायरी की दिशा अंग्रेज़ के खिलाफ़ मोड़ो और ये ग़ज़ल की काल्पनिक शायरी छोड़ो।" फ़ानी ने जवाब दिया कि मियां ये रविश तुमको मुबारक हो। हम

अपनी शायरी को सियासत की जानिब मोड़ना पसंद नहीं करते और तुम जो यह ऐतराज़ रखते हो कि मैंने इस रिसाले का नाम 'तस्नीम' क्यों रखा तो इसके जवाब में सवाल करता हूँ कि 'तस्नीम' नहीं तो क्या रिसाले का नाम 'हथौड़ा' रखता। इस पत्र-व्यवहार के बाद फ़ानी बहुत दिनों तक जोश से नाराज़ रहे।

फ़ानी 'तस्नीम' के प्रधान संपादक थे और 'मानी' व मख़्मूर के नाम सहायक संपादक के रूप में जाते थे। यह मासिक पत्रिका 1931 ई. तक नियमित रूप से निकलती रही। आरंभ में पत्रिका के प्रकाशन का व्यय फ़ानी, मानी जायसी और मख़्मूर अकबराबादी तीनों ने मिलकर उठाया था। पत्रिका घाटे में चल रही थी। अधिक धन की आवश्यकता पड़ी तो फ़ानी और मख़्मूर अकबराबादी ने हाथ खींच लिया। मानी जायसी ने दिसंबर, 1931 में अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर का संयुक्तांक प्रकाशित किया। मानी जायसी के संपादन में 'तस्नीम' जून, 1933 तक प्रकाशित होता रहा। फिर हमेशा के लिए बंद हो गया।

आर्थिक कठिनाइयाँ, महाराजा किशन परशाद के निमन्त्रण पर हैदराबाद के लिए प्रस्थान

'तस्नीम' में फ़ानी को लगभग एक हज़ार का नुकसान हुआ। वे वकालत छोड़ चुके थे। क़र्ज़ के सिवा आजीविका का कोई सहारा नहीं रहा। फ़ानी को सभी रास्ते बन्द दिखाई दिये। महाराजा किशन परशाद के रूप में उन्हें आशा की एक किरण दिखाई दे रही थी। फ़ानी को इस बात की शर्मिंदगी थी कि उन्होंने महाराजा से वादा किया था कि वे अपने वतन से जल्दी ही हैदराबाद लौट आयेंगे लेकिन वे आगरा चले गये और वहाँ पाँच वर्ष बिता दिये। वे सोचते थे कि अब क्या मुँह लेकर हैदराबाद जायें लेकिन इसके सिवाय और कोई रास्ता भी नहीं था। अतएव उन्होंने महाराजा किशन परशाद को पत्र लिखकर अपनी स्थिति से अवगत कराया। महाराजा, फ़ानी के वचन पूरा नहीं करने से नाराज़ थे। उन्होंने पत्रों के जवाब में मौन धारण कर लिया। फ़ानी बहुत परेशान हुए। अंततः उन्होंने मई, 1932 में एक शिकायत भरा पत्र महाराजा को लिखा जो कि एक नज़्म के रूप में था–

ऐ महाराजा बहादुर सर किशन परशाद 'शाद',
वास्ता उस बेकसी का जिससे निस्बत मुझको है।

वास्ता उस जब्रेकुल[1] का जिससे ख़लक़त[2] है मुराद,
वास्ता उस इज्ज़-ए-कुल का जो इबारत मुझसे है।

---

(1) परम सत्ता, सर्वोच्च शक्ति (2) संपूर्ण सृष्टि

वास्ता उस शाने-रिफ़अत[1] का जो हासिल है तुझे,
वास्ता उन पस्तियों का जिनमें रिफ़अत मुझसे है।

इस तरह अपनी असहाय स्थिति का वास्ता और तरह-तरह की क़समें देने के बाद पत्रों के उत्तर नहीं मिलने की शिकायत की है –

क्यों नहीं मिलता मुझे मेरे किसी ख़त का जवाब,
कुछ तो हो मालूम आख़िर क्या शिकायत मुझसे है।
इस तग़ाफ़ुल[2] का सबब, ये कज अदाई[3] किसलिए,
इस क़दर बेज़ार क्यों तेरी इनायत मुझसे है।

इसके बाद अपने दारिद्र्य और दुर्भाग्य का ज़िक्र करते हुए इस छंदोबद्ध पत्र को इन शे'रों पर ख़त्म किया है –

कुछ सही लेकिन ये मुमकिन है कि तू भूले मुझे,
याद है तेरा जो पैमान-ए-मुहब्बत मुझसे है।
मुझपे तू अहसां करे और भूलना चाहे तो ख़ैर,
मैं न भूलूंगा जो तेरे दर से निस्बत मुझको है।

इस पत्र ने असर दिखाया और महाराजा ने फ़ानी को हैदराबाद आने का आमंत्रण दिया। फ़ानी अपने परिवार को आगरे में ही छोड़कर हैदराबाद के लिए रवाना हो गये। विचार यह था कि हैदराबाद में ही स्थायी निवास की कोई सूरत निकल आये तो परिवार को भी वहाँ बुला लें। हैदराबाद पहुँचकर वे जानसन होटल में ठहरे। दो-तीन दिन बाद जोश मलीहाबादी के आग्रह पर उनके लाल टेकरी स्थित मकान में चले गये। वहाँ आठ दिन रहना हुआ। इसके बाद सुलह सराय नाम पल्ली में एक कमरा किराये पर लेकर रहने लगे।

फ़ानी के हैदराबाद पहुँचने के दूसरे दिन जोश मलीहाबादी ने उनके सम्मान में एक भोज का प्रबंध किया जिसमें हैदराबाद के संभ्रांतजनों, शायरों और लेखकों को आमंत्रित किया गया था। भोज के बाद काव्यगोष्ठी हुई। फ़ानी ने सबसे अंत में अपना कलाम सुनाया। उपस्थितजनों ने हर शे'र पर बेसाख़्ता दाद दी। जब उन्होंने यह मक़्ता सुनाया –

नज़्अ[4] में फ़ानी चुपके-चुपके तूने ये किसका नाम लिया,
क्यों ओ काफ़िर तेरी ज़बां पर अब भी ख़ुदा का नाम नहीं।

---

(1) बुलंदी, श्रेष्ठता (2) उपेक्षा
(3) अप्रिय व्यवहार (4) अंतिम क्षण, अंतिम सांस

तो जोश तड़प गये और कहा, "ख़ुदा की क़सम वो मक़्ता कहा है कि अगर सारी उम्र भी पढ़ते जाओ तो सुनने वाले को नया लुत्फ़ आयेगा।"

कुछ दिनों बाद जामिआ-उस्मानिया में फ़ानी के सम्मान में एक मुशायरा आयोजित किया गया। उन दिनों जामिआ अस्थायी रूप से जान कम्पनी के आस-पास की इमारतों में था। महाराजा किशन परशाद ने मुशायरे की सदारत की इस मुशायरे में सभी चोटी के शायरों ने शिरकत की थी।

महाराजा किशन परशाद ने फ़ानी के हैदराबाद पहुँचते ही अपने निजी कोष से साढ़े तीन सौ रुपये मासिक वृत्ति निश्चित कर दी।

महाराजा का दरबार, अदबी महफ़िलें

दानशीलता, साहित्यानुराग, सभ्यता और शालीनता की दृष्टि से हैदराबाद में महाराजा किशन परशाद के व्यक्तित्व की कोई समता नहीं थी। देश के बहुत से उच्चकोटि के विद्वानों, अध्येताओं और शायरों से उनके सम्बन्ध थे। हैदराबाद के विशिष्ट शायरों के अलावा देश के दूसरे भागों से जो शायर हैदराबाद आकर बस गये थे, उनके उदारतापूर्ण व्यवहार से लाभान्वित होते। महाराजा ने अपनी पेशकारी के ज़माने में 'मज्लिसे इत्तहाद' के नाम से एक संस्था की स्थापना की थी। हर शुक्रवार को गोष्ठी होती जिसमें शायर अपना तरही और गै़र तरही कलाम पेश करते। इन गोष्ठियों में शे'रो-शायरी पर बहसें भी होती थीं। इस संस्था के सदस्यों में ज़हीर देहलवी, सिराजुद्दीन अली ख़ाँ 'साहिल', मुफ़्ती ज़िया यार जंग, गुलाम मुस्तफा 'रसा', फ़जाहत जंग जलील, अख़्तर यार जंग 'अख़्तर' और मौलाना तुर्की के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराजा जब सल्तनत के सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त हुए तो अपनी व्यस्तताओं के कारण यह सिलसिला बंद कर दिया, अलबत्ता वे रविवार के दिन शायरों से मुलाकात करते। अपने पद से मुक्त होने के बाद फिर से मुशायरों का क्रम शुरू हो गया। पहले ये गोष्ठियाँ हर सप्ताह आयोजित होती थीं। बाद में इन्हें मासिक तरही मुशायरों में बदल दिया। भागीदारी करने वाले शायरों में प्रमुख नाम ये थे – ज़िया यार जंग, नज़्म तबातबाई, जोश मलीहाबादी, ज़ामिन कंतूरी, आज़ाद अंसारी, काज़िम अली बाग़, अज़ीज़ यार जंग 'अज़ीज़', गुलाम मुस्तफ़ा 'रसा', मिर्जा फरहतुल्लाह बेग, माहिरुल क़ादरी, हैरत बदायूनी, इज्लाल, आबिद अली बेगम, गुलाम पंजतन शम्शाद, लबैब देहलवी, मसऊद अली महवी, राजा नरसिंह राज 'आली' आदि। हैदराबाद आने के बाद फ़ानी भी इन मुशायरों में शरीक होने लगे।

फ़ानी को हैदराबाद आये हुए ज़्यादा दिन नहीं बीते थे कि आगरा में उनकी जवान लड़की का थोड़ी-सी बीमारी के बाद निधन हो गया। फ़ानी को इतनी मुहलत

भी नहीं थी कि वे आगरा जाकर उसके इलाज की समुचित व्यवस्था करते। इस घटना से उन्हें इतना गहरा आघात पहुँचा कि इसके बाद फ़ानी का दिल ज़िंदगी से उचाट हो गया और बाक़ी उम्र उन्होंने निराशा की मानसिकता में जीते हुए व्यतीत कर दी।

नौकरी की तलाश, प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्ति

महाराजा किशन प्रसाद ने अपने निजी कोष से फ़ानी के लिए एक मासिक वृत्ति निश्चित कर दी थी ताकि कोई अनुकूल नौकरी मिलने तक वे अपना गुजारा कर सकें। फ़ानी ने कदाचित यह अपेक्षा की थी कि उन्हें निज़ाम के दरबार में उपस्थित होने का सुअवसर मिलेगा और उन्हें राजाश्रय प्राप्त हो जायेगा। अतएव उन्होंने निज़ाम की वर्षगांठ पर बधाई का क़सीदा कहा जो उसी रूप में साप्ताहिक निज़ाम गज़ट और 'सुबह दकन' दैनिक के सालगिरह नम्बरों (अक्टूबर, 1933) में प्रकाशित हुए। लेकिन लेखकों और शायरों के संरक्षण में नवाब मीर उस्मान अली खां आसफ़े साबे की नीति अपने पूर्वजों से कुछ भिन्न थी। वे उन्हें किसी नौकरी में जगह देते या लेखन कार्य के लिए वृत्ति प्रदान करते, जिसमें अवधि भी निश्चित कर दी जाती। जलील मानकपुरी एकमात्र ऐसे शायर थे जो शाही उस्ताद होने के नाते मासिक वेतन पाते थे। उन दिनों हैदराबाद में रियासत से बाहर के लोगों को कठिनाई से नौकरी मिलती थी। हुकूमत ने यह नीति बनाई थी कि जो भी पद रिक्त हो उस पर किसी स्थानीय योग्य व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जाये। यदि उचित योग्यता रखने वाला कोई स्थानीय व्यक्ति न मिले तो इस स्थिति में किसी बाहरी व्यक्ति की नियुक्ति की जा सकती थी। सामान्यतया हैदराबाद शहर में रहने वाले गाँव-कस्बों में जाना पसंद नहीं करते थे। महाराजा बहादुर ने फ़ानी की योग्यता और वकालत के अनुभव को ध्यान में रखते हुए मुंसिफ़ के पद पर उनकी नियुक्ति के प्रयास किये। किसी ताल्लुके पर मुंसिफ़ की हैसियत से फ़ानी की नियुक्ति हो सकती थी। लेकिन फ़ानी ने हामी नहीं भरी। वे हैदराबाद में ही रहना चाहते थे। अब एक ही उपाय था कि उन्हें रियासत के स्थानीय व्यक्ति होने की शर्त से मुक्ति दिलाई जाये। अतः कार्यवाही शुरू हुई। बड़ी दौड़-धूप के बाद इसमें सफलता मिली और दारुलशफ़ा हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक के रूप में फ़ानी की नियुक्ति हो गयी। यहाँ इटावा के इस्लामिया हाई स्कूल का अनुभव फ़ानी के काम आया। उन्होंने स्कूल की व्यवस्था को बेहतर बनाया और शिक्षा के स्तर को भी ऊँचा उठाया। यद्यपि वेतन ज़्यादा नहीं था लेकिन महाराजा ने जो वृत्ति निश्चित की थी वह बंद नहीं हुई थी। इस प्रकार कुल मिलाकर फ़ानी को पर्याप्त आय होने लगी थी। उन्होंने स्कूल की को-ऑपरेटिव सोसायटी से क़र्ज़ लेकर मोटर भी ख़रीदी। फ़ानी का स्वभाव कुछ ऐसा था कि पैसा न हो तो फ़ाक़े

से भी गुज़र कर लेते थे और जब हाथ में पैसा हो तो खुलकर ख़र्च कर देते। उनके जीवन में ख़ुशहाली के कई दौर आये लेकिन वे धन-संग्रह नहीं कर सके। हैदराबाद में फ़ानी के जीवन का यह समय काफ़ी सुख-सुविधाओं में व्यतीत हुआ। शाम होते ही उनके घर मित्रों का जमाव हो जाता और शे'र-ओ-सुख़न की महफ़िल सजती। जोश मलीहाबादी, होश बिलग्रामी, हकीम आज़ाद अंसारी, हैरत बदायूनी नियमित रूप से उनके घर आते। इनके अलावा नवाब निसार यार जंग 'मजाज़', मसऊद अली महवी, माहिरुल क़ादरी, तुराब यार जंग सईद, हादी बदायूनी, नाज़िम सिद्दीकी और मास्टर फ़िदा हुसैन भी उन महफ़िलों में शरीक होने लगे। अली अख़्तर और गुलाम पंजतन भी कभी-कभार आ जाते।

हैदराबाद के अमीरों में निसार यार जंग और तुराब यार जंग के अलावा, सर याकूब, कुदरत नवाज़ जंग, शहीद यार जंग, अकबर यार जंग, असग़र यार जंग, महदी नवाज़ जंग और नरसिंह राज आली से भी फ़ानी के मधुर सम्बन्ध थे। इस जमाने में हैदराबाद में आये दिन मुशायरे होते रहते थे। फ़ानी महाराजा किशन परशाद के दरबार की महफिलों के अतिरिक्त अन्य मुशायरों में भागीदारी करने से बचते थे। कभी-कभी निजी गोष्ठियों और ख़ास मुशायरों में शरीक हो जाया करते थे। 'जिगर' अक्सर हैदराबाद आया करते थे। कभी वह फ़ानी के मेहमान रहते। इसी तरह हफ़ीज जालंधरी, नियाज़ फ़तहपुरी और दूसरे लेखक और शायर हैदराबाद आया करते थे। उन दिनों शे'रो-शायरी की महफ़िलों के आयोजन अपनी चरम सीमा पर थे।

हैदराबाद में कुछ शायरों से फ़ानी की बनी नहीं। ये वे लोग थे जिनका सम्बन्ध होश बिलग्रामी और जोश के विरोधी गुट से था। उन्हीं में अज़ीज़ यार जंग अज़ीज़ भी थे जो 'दाग़' के शागिर्द थे और महाराजा के दरबार में हाज़िर हुआ करते थे। उन्होंने एक स्थानीय पत्रिका में फ़ानी की शायरी पर आलोचना का एक सिलसिला शुरू किया जिसमें भाषा-शैली के दोषों का निरूपण किया गया था। विरोधियों ने महाराजा को फ़ानी से नाराज करने की बहुत कोशिशें कीं लेकिन महाराजा पर विरोधियों की बातों का कोई असर नहीं हुआ। नियाज़ फ़तहपुरी ने अली अख़्तर को जोश के मुक़ाबले में खड़ा किया था और 'हर्फ़-ए-आख़िर' के जवाब में उनसे एक लम्बी कविता 'क़ौल-ए-फैसल' लिखवाई थी। जोश से विरोध के कारण अली अख़्तर फ़ानी से भी खिंचे-खिंचे रहते थे। जिन दिनों फ़ानी हैदराबाद जाने को लेकर महाराजा से पत्र-व्यवहार कर रहे थे, उस समय यास यगाना चंगेज़ी भी महाराजा के कृपाकांक्षी थे। महाराजा इनमें से किसी एक को बुलाना चाहते थे। उन्होंने अपने कुछ विश्वास पात्र साथियों से परामर्श किया तो उन्होंने 'यगाना' की तुलना में फ़ानी को तरजीह दी। जोश मलीहाबादी और हैरत

बदायूनी ने भी पुरज़ोर सिफ़ारिश की और महाराजा ने उन्हें हैदराबाद आने का निमंत्रण दिया। यास यगाना चंगेज़ी को इस बात का पता चला तो वे जोश और फ़ानी के विरोध में खड़े हो गये। 'जिगर' भी फ़ानी के मित्र थे, वे भी उनके विरोध का शिकर बने। यगाना ने तीनों शायरों के कलाम को आलोचना का लक्ष्य बनाकर अपने जी की भड़ास निकाली।

प्रिंस मुअज़्ज़म जाह के दरबार से सम्बन्ध

प्रधानाध्यापक पद पर फ़ानी की नियुक्ति को कुछ महीने हुए थे कि एक दिन प्रिंस मुअज़्ज़म जाह बहादुर ने उन्हें अपने दरबार में याद किया। मुअज़्ज़म जाह को शायरी और संगीत से विशेष लगाव था। उनका दरबार राज को सजता था जिसमें विशिष्ट अमीर, गण्यमान्य व्यक्ति, विद्वान और शायर सम्मिलित होते थे। पहले रात्रि-भोज होता फिर महफ़िल जमती। इन महफ़िलों में शे'रो-शायरी के अलावा अन्य साहित्यिक और धार्मिक विषयों पर विचार-विमर्श होता। शुक्रवार को रात्रि-भोज के बाद दरबारी संगीतकार मुअज़्ज़म जाह के कलाम को साज़ पर पेश करते। दरबार की भाषा में इसे मुशायरा कहा जाता था। इन मुशायरों में कुछ गिने-चुने शायरों को आमंत्रित किया जाता था। मुअज़्ज़म जाह अपने दरबार के क़तिपय शायरों से परामर्श लिया करते थे कि किन शायरों को बुलाना उचित रहेगा। ऐसे ही एक अवसर पर जोश ने फ़ानी का नाम सुझाया। मुअज़्ज़म जाह उनकी ख्याति सुन चुके थे। उन्होंने जोश से इच्छा व्यक्त की कि वे अगले मुशायरे में फ़ानी को अवश्य साथ लायें। जोश ने बड़े आग्रह के बाद फ़ानी को तैयार किया और अपने साथ उन्हें दरबार में ले गये। मुअज़्ज़म जाह की फ़र्माइश पर फ़ानी ने अपना कलाम सुनाया तो वे बहुत प्रभावित हुए और इच्छा व्यक्त की कि वे प्रतिदिन दरबार में उपस्थित हुआ करें। पहली ही भेंट में फ़ानी पर मुअज़्ज़म जाह की शालीनता और संस्कारशीलता का अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने रोज़ आना स्वीकार कर लिया। शाम होते ही उन्हें लेने के लिए घर पर कार आ जाती और वे रात देर गये तीन बजे के आस-पास घर लौटते। कुछ समय आराम करने के बाद स्कूल चले जाते। इन रतजगों के कारण वे अपनी नौकरी के दायित्वों को ठीक से नहीं निभा पा रहे थे और उनके स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ रहा था। फ़ानी ने मुअज़्ज़म जाह से अनुरोध किया कि वे इस दायित्व से उन्हें मुक्त कर दें और उन्होंने अपने विकल्प के रूप में नज्म आफ़ंदी का नाम सुझाया, जिसे प्रिंस ने स्वीकार कर लिया। जो मासिक वृत्ति फ़ानी को मिला करती थी, अब वह आफ़ंदी को दी ज़ाने लगी। मुअज़्ज़म जाह के दरबार से इसके बाद भी फ़ानी का सम्बन्ध बना रहा। हर शुक्रवार को वे सवारी भेजकर फ़ानी को रात्रि-भोज और मुशायरे के लिए बुलाते।

जीवन का अंतिम समय, पत्नी का निधन, आर्थिक कष्ट, लम्बी बीमारी और देहावसान

फ़ानी के जीवन में जो सुख के क्षण आये थे, बहुत जल्दी बीत गये। आमदनी बढ़ने के साथ फ़ानी ने अपने ख़र्चे भी बढ़ा लिये थे। महाराजा की वृत्ति और मुअज़्ज़म जाह का वेतन बंद हो जाने के बाद सिर्फ़ अध्यापकी के वेतन का सहारा रह गया। बढ़े हुए ख़र्चो की पूर्ति क़र्ज़ से होने लगी। फ़ानी की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। तत्पश्चात् एक के बाद एक मुसीबतों का सिलसिला शुरू हो गया। फ़ानी के विरोधी जो महाराजा की मदारुलमहामी[1] के ज़माने में खुलकर उनका विरोध नहीं कर पाते थे, उन्होंने महाराजा के मंत्री पद से मुक्त होने के बाद फ़ानी के विरुद्ध षडयंत्र रचना शुरू कर दिया। उन्होंने शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारी को फ़ानी के खिलाफ़ अपने पक्ष में ले लिया और वे इस टोह में रहे कि कोई अवसर मिलते ही फ़ानी के खिलाफ़ कार्यवाही करें। जब प्रिंस मुअज़्ज़म के यहाँ रात-रात भर जागने के कारण फ़ानी लगातार विलम्ब से स्कूल में उपस्थित होते रहे और उनसे अपने दायित्व-निर्वाह में कुछ असावधानियाँ हुईं और उनकी रिपोर्ट विभाग को पहुँची तो उनका तबादला नांदेड़ कर दिया गया, जो रियासत का एक पिछड़ा हुआ ताल्लुक़ा था। फ़ानी इसे सहन नहीं कर सके। नांदेड़ में फ़ानी जिस मानसिक यातना का शिकार हुए, इसका अनुमान उस क़त्अे से लगाया जा सकता है जो उन्होंने उन्हीं दिनों लिखा था। कुछ शे'र प्रस्तुत हैं –

सर गुज़श्त-ए-ग़म-ए-तनहाई-ए-नांदेड़ न पूछ,
मैं वहाँ हूँ कि जहाँ मैं भी हूँ कुछ आप से दूर।

जिस तरफ़ देखिए इक आलम-ए-हू की तस्वीर,
जिस तरफ़ जाइए वहशत से फ़ज़ाएं मामूर।

सुबह से शाम-ए-ग़रीबां की बलाओं का नुज़ूल,
शाम से गौर-ए-ग़रीबां की ख़मोशी का ज़हूर।

फ़ानी की यह दिनचर्या बन गयी थी कि सप्ताह में चार-पाँच दिन मुश्किल से नांदेड़ में टिकते। फिर हैदराबाद चले आते। वे एक दिन हैदराबाद में रहकर नांदेड़ वापस लौटते। इस ज़माने में मुअज़्ज़म जाह के दरबारी मुशायरों में नियमित रूप से भागीदारी करते रहे। कुछ महीनों तक यह सिलसिला चलता रहा। फिर उन्होंने लम्बी छुट्टी ले ली। इस दौरान उनका तबादला नांदेड़ से वरंगल फिर

---

(1) वह व्यक्ति जिस पर सरकारी कामकाज का दारोमदार हो, मदारुलमहाम कहलाता है, आज की भाषा में प्रधानमंत्री।

वरंगल से जगतयाल कर दिया गया। फ़ानी किसी भी जगह पर ज़्यादा दिन नहीं रहे। हर बार वे छुट्‌टी लेकर हैदराबाद आ जाते। अब उन्हें ज़्यादा छुट्टियों के कारण आधा वेतन मिलने लगा। उधर क़र्ज़ का बोझ सीमा पार कर गया था और क़र्ज़दाता तंग करने लगे थे। महाराजा किशन परशाद समय-समय पर फ़ानी की आर्थिक सहायता करते रहे थे। उनसे और अधिक सहायता के लिए अनुरोध करने में फ़ानी को संकोच महसूस होता था। मुअज़्ज़म जाह के दरबार में वे स्वाभिमान के साथ उपस्थित होते थे। वे कभी अपने कष्टों का ज़िक्र न करते और किसी को महसूस तक न होता कि वे आर्थिक कठिनाइयों में घिरे हुए हैं। लेकिन अब उनके लिए इसके सिवा कोई रास्ता नहीं रह गया था कि वे मुअज़्ज़म जाह से मदद मांगे। उन्होंने अत्यंत विवश होकर अपने क़र्ज़ का ज़िक्र किया तो मुअज़्ज़म जाह ने सालारजंग से कहकर धनराशि दिला दी और फ़ानी को किसी क़दर राहत मिली।

प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्ति के समय फ़ानी की आयु चौवन वर्ष की थी। सरकारी नौकरी में वृत्ति पाने की आयु-सीमा पचपन वर्ष थी। एक वर्ष बाद महाराजा ने फ़ानी की नौकरी की अवधि में पाँच वर्ष की वृद्धि करा दी। इस अवधि के समाप्त होने पर उन्हें 1939 ई. में सेवामुक्त कर दिया गया। फ़ानी ने छः वर्ष नौकरी की थी। इसी अवधि में उन्हें कुछ माह आधा वेतन भी मिला। सरकारी वृत्ति नाममात्र को मिलती थी। आय का कोई अन्य साधन नहीं था। उन्हीं दिनों फ़ानी की पत्नी कैंसर से पीड़ित हो गयीं। फ़ानी क़र्ज़ लेकर बच्चों का पेट पालते रहे और पत्नी का उपचार कराते रहे। 1940 ई. में पत्नी का स्वर्गवास हो गया। उस समय फ़ानी के पास अंतिम संस्कार के लिए भी पैसे नहीं थे। एक जागीरदार मित्र ने मदद करनी चाही तो फ़ानी ने स्वीकार नहीं किया। तब उस मित्र ने 'इर्फ़ानियात-ए-फ़ानी' की कुछ प्रतियां ख़रीद लीं। इस राशि से अंतिम संस्कार का प्रबंध हुआ। अंत्येष्टि के बाद जब घर लौट रहे थे, फ़ानी ने हैरत बदायूनी से कहा, ".....अब हमारा भी वक़्त आ गया है....." और अपनी मृत्यु-तिथि का यह क़त्आ सुनाया –

ऊ अज़ जहां गुज़श्त कि आख़िर ख़ुदा नबूद,
ऊ ईं चुनीं बज़ीस्त कि गोई ख़ुदा नदाश्त।
तुग़यान-ए-नाज़बीन कि ब लौह-ए-मज़ार-ए-ऊ,
सबूत अस्त साले-रहलते-फ़ानी "ख़ुदा नदाश्त"।

– 1360 हिज्री

(अर्थात् वह इस जहॉ से गुज़र गया, इसलिए कि वह ख़ुदा तो था नहीं। वह इस तरह जिया जैसे कि उसका कोई ख़ुदा नहीं रहा हो। क़ुदरत की यह

सितमज़रीफ़ी देखिए कि उसके मज़ार के कत्बे पर उसकी मृत्यु का साल 'खुदा नदाश्त' दर्ज है। 'खुदा नदाश्त' अक्षरों की अंकगणना करने पर 1360 हिज्री निकलता है।)

बेगम फ़ानी की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद 8 सितम्बर, 1940 को फ़ानी के शुभचिंतक महाराजा किशन परशाद स्वर्ग सिधार गये और उनसे वह सहारा भी छिन गया, जिससे आख़िरी उम्मीद जुड़ी हुई थी। फ़ानी के सामने आजीविका का भीषण संकट खड़ा हो गया। क़र्ज़ लेकर वे अपनी ज़रूरतें पूरी करते थे जिसकी अदायगी की कोई सूरत न थी। आख़िर नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि एक साहूकार ने उनके ख़िलाफ़ अदालत से डिग्री ले ली और कुर्क़ अमीन को लेकर दरवाजे पर आ पहुँचा। फ़ानी बहुत परेशान हुए। उन्होंने अली उसीद को बुलाया जो पड़ोस में रहते थे। अली उसीद को स्थिति का पता चला तो वे साहूकार को अपने घर ले गये और समझा-बुझा कर पंद्रह दिन का समय ले लिया। समय बीता और क़र्ज़ अदा न हो सका। साहूकार ने अदालत से फ़ानी की गिरफ़्तारी का वारंट जारी करने की याचना की। किसी तरह फ़ानी को इसकी सूचना मिल गयी। इज़्ज़त बचाने की एक ही सूरत उनके सामने थी कि वे चुपके से बदायूँ चले जायें। अली उसीद ने यात्रा के लिए पैसों की व्यवस्था कर दी। फ़ानी ने कलदार बनवाने के लिए रक़म अपने बड़े बेटे वजाहत अली ख़ाँ को सौंप दी और खुद काचीगोड़ा सराय पहुँचे। वजाहत अली ख़ाँ के लौटने से ट्रेन छूट गयी। फ़ानी वहाँ से निसार यार जंग के मकान पर पहुँचे जो उनके प्रशंसक और शुभचिंतक थे। निसार यार जंग ने फ़ानी से कहा कि वे बदायूँ जाने का इरादा न करें और फ़िलहाल उनके घर ठहरें। वह हाशिम यार जंग (मीर हाशिम अली ख़ाँ) जज हाई कोर्ट से मिलकर उनको दिवालिया (Insolvent) क़रार देने की कार्यवाही करेंगे। तीन रोज़ निसार यार जंग के यहाँ रहकर फ़ानी अपने घर लौट आये। इस कार्यवाही का कुछ पता नहीं चला। अलबत्ता कुछ दिन बाद यह सूचना मिली कि साहूकार ने अदालत से डिग्री हासिल कर ली और वह कुर्की या वारंट लाने वाला है। अली उसीद साहूकार के घर पहुँचे। उसने बताया कि अदालत के ख़र्च के लिए नौ सौ की डिग्री है। अली उसीद ने इस मामले से होशयार जंग को जोड़ दिया। होशयार जंग और कुछ मित्रों ने फ़ानी के लिए पाँच सौ रुपये इकट्ठे किये थे ताकि उनका नाम वकील की हैसियत से हाईकोर्ट में दर्ज करायें। यह राशि शहीद यार जंग के यहाँ सुरक्षित थी। होशयार जंग ने अली उसीद यार जंग के पास भेजा। फ़ानी का इरादा वकालत करने का न था। इसलिए वे यह राशि क़र्ज़ में देने के लिए राज़ी हो गये। अली उसीद साहूकार से मिले और समझाया कि फ़ानी को जेल भेजकर उसे कोई फ़ायदा न होगा। उल्टे जेल के ख़र्च भी उसे उठाने होंगे। इसलिए बेहतर यह है कि वह जो भी पैसे मिल रहे हैं, उन्हीं पर संतोष करे। साहूकार ने बात मान ली और यह मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया।

कुछ हितैषी लोग इस चिंता में थे कि फ़ानी की आय के साधन जुटाये जायें। मीर हाशिम अली ख़ाँ हाई कोर्ट के जज थे। यह बात उनकी जानकारी में लाई गयी तो उन्होंने फ़ानी को अदालत का कमिश्नर नियुक्त करा दिया। कमिश्नर का कोई निश्चित वेतन नहीं था। उसे वादी और प्रतिवादी के घर जाकर बयान लेना होता था और मुक़दमें की आर्थिक स्थिति के अनुसार कमिश्नर को फ़ीस मिल जाती थी। उन दिनों फ़ज़्लुर्रहमान नश्रगाह लास्की हैदराबाद के डिप्टी कंट्रोलर थे और मीर हसन प्रोग्राम के इंचार्ज थे। इन आत्मीयजनों के कारण फ़ानी को हर महीने प्रोग्राम मिलने लगे। उन दिनों फ़ानी ने अपनी रचनाओं के अलावा अन्य विषयों पर वार्ताएं भी प्रसारित कीं। आय के ये स्रोत सीमित और अस्थायी थे और गुज़र-बसर के लिए नाकाफ़ी थे। ऐसे भी दिन आये जब घर में खाने के लिए कुछ भी न रहा और फ़ाक़े करने पड़े। परिस्थितियों ने फ़ानी को अधिक संवेदनशील और शंकालु बना दिया था। वे यह गवारा नहीं करते थे कि कोई उन पर तरस खाये। इसलिए सहानुभूति रखने वाले मित्र भी उनकी सहायता करने में असमर्थ रहते थे।

आर्थिक स्थिति के साथ फ़ानी का स्वास्थ्य भी बिगड़ता जा रहा था। जुलाई 1941 में वे गम्भीर रूप से बीमार हुए और एक महीने बाद 27 अगस्त, 1941 को निधन हो गया। अहाता दरगाह यूसुफ़ीन में उन्हें दफ़न किया गया।

संतान

फ़ानी के तीन संतानें हुईं। सबसे बड़े बेटे सआदत अली ख़ाँ (फ़ीरोज़ क़द्र) का जन्म 1904 में हुआ। दूसरे बेटे वजाहत अली ख़ाँ (हुमायूँ क़द्र) उनसे दो वर्ष छोटे थे। इनके बाद बेटी सलीमा ख़ातून का जन्म 1908 में हुआ। फ़ानी अपनी शादी के बाद ज़्यादातर बदायूँ से बाहर और बीवी-बच्चों से दूर रहे और संतान की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दे सके। आगरा निवास के अंतिम दिनों में परिवार को पास बुला लिया था। हैरदाबाद में भी वे पास रहे। सलीमा ख़ातून का निधन आगरा में ही हो गया था। सआदत अली ख़ॉ बेरोज़गार थे। फ़ानी के सम्बन्धों के कारण उन्हें कुछ विभागों में नौकरी मिली भी लेकिन स्थायी रूप से कहीं काम नहीं कर सके। फ़ानी की मृत्यु के बाद घर की रही-सही सम्पत्ति बेच दी। आख़िर में बासी रोटी तक को मुहताज हो गये और बड़ी असहाय स्थिति में 11 नवम्बर, 1962 को उनकी मृत्यु हो गयी। दूसरे बेटे थोड़ी बहुत हिकमत जानते थे। इसी पर गुज़र-बसर करते थे। 1948 में उनका भी निधन हो गया।

फ़ानी की रचनाओं के संग्रह

फ़ानी ने 1890 ई. से शे'र कहना शुरू किया था। शे'र कहने का यह सिलसिला प्राणांतक बीमारी से कुछ पहले तक जारी रहा। उनके जीवन-काल में उनकी रचनाओं के चार संग्रह प्रकाशित हुए। यथा – दीवान-ए-फ़ानी (1921 ई.), वाक़्यात-ए-फ़ानी (1922), इर्फ़ानियात-ए-फ़ानी (1938) और विज्दानियात-ए-फ़ानी (1940)। फ़ानी की मृत्यु के पाँच साल बाद हैरत बदायूनी ने कुल्लियात-ए-फ़ानी का सम्पादन किया, इसमें वह कलाम भी शामिल कर दिया जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ था लेकिन किसी संग्रह में शामिल नहीं था। मुझे फ़ानी की कुछ और ग़ज़लें पत्र-पत्रिकाओं में मिलीं, जो हैरत बदायूनी की नज़र से नहीं गुज़री थीं। इसके अलावा फ़ानी की आरम्भिक रचनाओं की एक पाण्डुलिपि मिली जो उनके बेटे सआदत अली ख़ाँ के अधिकार में थी। इसमें अधिकांश वे रचनाएँ हैं, जिन्हें फ़ानी ने किसी भी संग्रह में प्रकाशन योग्य नहीं समझा था। फ़ानी की पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त ग़ज़लों और आरम्भिक रचनाओं को मैंने अपने द्वारा सम्पादित पुस्तक 'फ़ानी की नादिर तहरीरें' में संगृहीत किया है।

फ़ानी ने पहले अपना उपनाम 'शौकत' रखा था जब उन्होंने शायरी के क्षेत्र में पदार्पण किया, अमीर और 'दाग़' की शायरी की हर तरफ़ चर्चा थी। फ़ानी भी इन शायरों से प्रभावित हुए। आगे चलकर वे 'मीर' और 'ग़ालिब' की शायरी के प्रभाव में आ गये। उन्होंने अपनी रचनाओं का किसी से संशोधन नहीं कराया। अध्ययन और परिश्रम से अपनी प्रतिभा को निखारते रहे।

चिंतन-दृष्टि

फ़ानी दर्शन के विद्यार्थी थे। क़ुरान और तसव्वुफ़ (अध्यात्म) का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था। वे एक चिंतक कवि थे। जीवन और जगत के विषय में उनका एक विशेष दृष्टिकोण था। यह दृष्टिकोण दीर्घ जीवनानुभवों और चिंतन की प्रक्रिया के बाद बना था। वे शापनहावर के दर्शन, बुद्ध की शिक्षाओं और इशायरा के धार्मिक विचारों से प्रभावित थे। लेकिन उन्होंने किसी विशेष वैचारिक संप्रदाय से जुड़कर जीवन और जगत की व्याख्या नहीं की बल्कि उन्होंने इन विचारों का अपनी दृष्टि के निर्माण में उपयोग किया है। उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व और उसकी समस्याओं को अपनी रचना का विषय बनाया। उन्हें मानवीय अस्तित्व और सांसारिक वास्तविकता में द्वन्द्व दिखाई दिया। फ़ानी की शायरी इसी द्वन्द्व और अंतःक्रिया को अभिव्यक्ति देती है।

प्रसिद्ध अस्तित्ववादी विचारक और साहित्यकार ओनोमॉनो कहता है कि हमारा दर्शन या जीवन को समझने या न समझने का तरीक़ा जीवन के बारे में हमारे सोच से जन्म लेता है। व्यक्ति का यह बोध कि जीवन अस्थायी है, हर वस्तु नश्वर है और संसार क्षण-भंगुर है; उसके मन में अनश्वरता की तीव्र इच्छा को जन्म देता है। मनुष्य की मृत्यु और वस्तुओं का नष्ट होना एक ऐसा सत्य है जिसे कोई भी दर्शन या धर्म झुठला नहीं सकता। शायरों ने भी जीवन को स्वप्न (ख़्वाब) और मरुस्थल (सराब) के रूप में देखा है। फ़ानी कहते हैं :

बुनियाद-ए-जहाँ क्या है, मजबूर-ए-फ़ना होना,
सरमाया-ए-हस्ती है, महरूम-ए-बक़ा होना।

कैफ़ीयत-ए-ज़हर-ए-फ़ना के सिवा नहीं,
हस्ती की इस्तलाह में दुनिया कहें जिसे।

नित्यता जीवन की मूलभूत अपेक्षा है। नित्यता की आशा में ही मनुष्य जीवन को स्वीकार करता है। नैतिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए किसी न किसी रूप में नित्यता अपरिहार्य है। इसीलिए संसार के सभी धर्मों में मृत्यु के पश्चात् जीवन की कल्पना की गयी है। एक ओर मिथ्यात्व और नश्वरता का भाव है, दूसरी ओर नित्यता की इच्छा है जिसके कारण मनुष्य के मन और मस्तिष्क में सदैव द्वन्द्व की प्रक्रिया चलती रहती है।

उर्दू शायरी में मीर और ग़ालिब की भाँति इक़बाल और फ़ानी भी ऐसे शायर हैं जिनके भाव-बोध का आधार नित्यता का संधान एवं आकांक्षा है।

फ़ानी के यहाँ मिथ्या भौतिक पदार्थों के प्रति अस्वीकृति का भाव मिलता है और इसी भाव के माध्यम से वे नित्यता की आकांक्षा को अभिव्यक्ति देते हैं। इसकी अपेक्षा वे उन वस्तुओं के प्रति लालायित होते हैं जो नष्ट नहीं होतीं। वे सांसारिक दु:खों की इसलिए उपेक्षा करते हैं क्योंकि वे स्थायी नहीं हैं और वे इस क्षणिक दु:ख को एक स्थायी दु:ख में बदलने की आकांक्षा रखते हैं :

ग़म-ए-फ़ानी-ओ-ऐश-ए-बरहम क्या,
जाविदां हो तुम ऐश है ग़म क्या।

नित्यता के अभाव में जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वह दीवाने का सपना बन जाता है। जीने की इच्छा के लोप हो जाने पर जीवन के विषय में नियतिवादी या भाग्यवादी विचार उभरते हैं। यदि जीवन का कोई उद्देश्य है तो मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिए अपने कर्मक्षेत्र में पूर्णतः स्वतंत्र होगा। फ़ानी जीवन के हर पक्ष में नियति का हस्तक्षेप अनुभव करते हैं। यह मनुष्य का मात्र भ्रम है

कि उसका जीवन पर कुछ अधिकार है :

ज़िंदगी जब्र है औ जब्र के आसार नहीं,
हाय इस क़ैद को ज़ंजीर भी दरकार नहीं।

मनुष्य को अपने जीवन पर अधिकार का भ्रम है, इसी कारण उसे अपने कर्मों के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया है, जबकि मनुष्य कर्ता तो है ही नहीं, वह किसी वस्तु की इच्छा भी नहीं कर सकता। उससे जो अच्छे या बुरे कर्म होते हैं, उनमें उसकी इच्छा या निश्चय का कोई हाथ नहीं होता। यहाँ तक कि पाप के बाद जब वह शर्मिन्दा होता है तो यह शर्म भी उसके बस में नहीं है :

चाहूँ भी और ये ज़िद है चाहा उन्हीं का चाहूँ,
दिल से दुआ भी निकले, दिलख़्वाह भी न निकले।

घुटता है जी कि हम नहीं मुख़्तार-ए-इन्फ़आल[1],
इक मौज-ए-खूँ भी है अर्क़-ए-इन्फ़आल में।

फ़ानी ने इस नियति पर खुलकर व्यंग्य किया है और कभी इस व्यंग्य ने प्रतिरोध का रूप ले लिया है :

जिस्म-ए-मजबूरी में फूँकी तूने आज़ादी की रूह,
ख़ैर जो चाहा किया अब ये बता हम क्यों करें।

मजबूरी-ए-उर्या[2] को ये ख़िलअत-ए-मुख़्तारी[3],
अल्लह रे करम हम और तौफ़ीक़-ए-गुनहगारी।

बख़्श दे जब्र-ए-कुल के सदक़े में,
हर गुनह मेरी बेगुनाही है।

फ़ानी को निराशावादी शायर कहा गया है। फ़ानी की शायरी में दुःख की गहरी छाया को देखते हुए यह बात सच प्रतीत होती है। लेकिन उनकी शायरी को ध्यानपूर्वक पढने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि फ़ानी की मुख्य समस्या दुःख नहीं बल्कि नित्यता है। जीवन की नियति और नश्वरता को वे बिना किसी प्रतिरोध के स्वीकार कर लेते तो निराशावादी कहे जा सकते थे। लेकिन उन्होंने इसे कभी हृदय से स्वीकार नहीं किया। उनमें सदैव जीवन की वास्तविकता को जानने की जिज्ञासा रही।

---

(1) जिसका लज्जा पर अधिकार हो (2) नग्न विवशता
(3) अधिकार की प्रतीकशाही पोशाक

सूफ़ी लोग सृष्टि के मर्म और लक्ष्य की व्याख्या करते हुए प्रायः इस हदीस-ए-कुदसी का हवाला देते हैं –

कुंता कंज़न मख़्फ़ियन फ़ अहबतू अन् आरफः फ़ ख़लक़तुल ख़ल्क़ल आराफ़ू।

अर्थात् ज़ाते-हक़ (परम तत्त्व) एक छुपा हुआ ख़ज़ाना थी। उसने चाहा कि उसे पहचाना जाये, सो उसने पैदा किया। फ़ानी ने एक शे'र में इसे परम सत्ता का आत्म-प्रदर्शन और लीला-भाव कहा है –

आईना बसद जल्वा ओ जल्वा बसद रंग,
क्या-क्या न किया तेरी तमाशा तलबी ने।

क़ुरान में सृष्टि के मर्म को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है – व मा खलक़तुल जिन्ना वल इन्सा उल्ला लिया बुदूना (और मैंने बनाये जो जिन और आदमी, सो अपनी बंदगी को।) फ़ानी ने इस आयत के भाव को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है –

हासिल-ए-ख़लक़त है तामीर-ए-जबीं सज्दा रेज़,
शान-ए-तक्वीन-ए-दो आलम गायत-ए-यक सज्दा है।

शे'र में अंतर्निहित व्यंग्य से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के इस मर्म से फ़ानी संतुष्ट नहीं थे।

फ़ानी के चिंतन में आगे चलकर एक मोड़ आता है, जब वह इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि सृष्टि और स्रष्टा में सिर्फ़ बंदा और मालिक का सम्बन्ध नहीं है बल्कि दोनों में मूल और शाखा का अंतर है। सृष्टि वस्तुतः वियोग और विछोह है और वियोग में मिलन की आकांक्षा जन्म लेती है। जब प्रेम की अदम्य भावना उपजती है जब नियति, नियति नहीं रहती; वह सहमति और स्वीकार में बदल जाती हैं निजता और जीवन का दुःख प्रेम के विषाद में बदल जाता है। फ़ानी के यहाँ दुःख ईश्वर की अमानत है और उसमें नित्यता का भाव निहित रहता है –

असीर-ए-बंद-ए-दिल होकर ग़म-ए-दुनिया से फ़ारिग़ हों,
मिरी आज़ादियों का राज़ है मजबूर हो जाना।

ज़हे तक़दीर-ए-नाकामी कि तेरी मस्लेहत ठहरी,
तिरी मर्ज़ी से वाबस्ता हुआ अल्लाह रे ग़म मेरा।

जो इबारत न हो तेरे ग़म से,
अहल-ए-दिल पर वो ज़िंदगी है हराम।

ग़म उसकी अमानत है इन्आम-ए-मुहब्बत है,
बेगानगी-ए-ग़म को महरूमी-ए-ग़म कहिए।

प्रेम की वेदना प्रिय के दर्शन और मिलन की इच्छा से उपजती है। प्रिय की खोज में प्रेमी विकल भाव से भटकता रहता है, इस खोज की विकलतापूर्ण मनःस्थिति को फ़ानी ने बड़े प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति दी है–

तेरी तलाश का अफ़साना गर बयां होता,
रह-ए-मजाज़[1] का हर ज़र्रा इक ज़बां होता।

निगाहों ने दिलों में दिल ने आँखों में तुझे ढूँढा,
तेरी धुन में रहे सौदाइयान-ए-जुस्तजू[2] बरसों।

मावरा-ए-हद्द[3]-ए-हर मंज़िल है शायद कू-ए-दोस्त[4],
हमने जो छानी न हो ऐसी कोई मंज़िल नहीं।

तू कहाँ है कि तेरी राह में ये काबा-ओ-दैर,
नक़्श बन जाते हैं मंज़िल नहीं होने पाते।

हर राह से गुज़र कर दिल की तरफ़ चला हूँ,
क्या हो जो उनके घर की ये राह भी न निकले।

कुरान में कहा गया है कि 'ला तुदरिकुमुल अबसार'। (दृष्टि मुझे नहीं देख सकती।) अर्थात् ईश्वर की सत्ता अपनी प्रकृति में अद्रष्ट हैं फ़ानी की दर्शन की अभिलाषा भी संकोच से टकराकर रह गयी। कहते हैं :

सुनते हैं हिजाब उनका इर्फान-ए-तमन्ना है,
अब हर्फ़-ए-तमन्ना की ताबीर को क्या कहिए।

दर्शन से वंचित रहने का यह अहसास उस समय तक ख़त्म नहीं होता जब तक कि कल्पना और यथार्थ का द्वैत बना रहता है। साधना के एक क्षण में जब यह बोध होता है कि यह अंतर भ्रममूलक है, वास्तविक नहीं है तो समूची सृष्टि ब्रह्म ज्योति से आलोकित नज़र आती है। इस बोध के साथ प्रेम की भावना का उदात्तीकरण हो जाता है –

जिस तरफ़ देख लिया फूँक दिया तूर-ए-मजाज़,
ये तेरे देखने वाले वो नज़र रखते हैं।

ज़ौक-ए-नज़्ज़ारा सलामत चाहिए,
जिस तरफ़ देखा वो सूरत देख ली।

---

(1) लौकिक मार्ग (2) खोज के अभिलाषी
(3) दृष्टि के उस पार (4) प्रिय की गली

इसके पश्चात प्रेम में लज्जा के स्थान पर उन्माद, आवेग और उथल-पुथल की प्रधानता हो जाती हैं असफलताओं से निराशा नहीं होती। वेदना का उपचार फ़ानी ने कभी इच्छा के परित्याग द्वारा किया था और असफल रहे थे :

रोज़ बढ़ती ही रही इक आरज़ू,
रोज़ तर्के-आरज़ू करते रहे।

और,

तर्क-ए-ग़म से खुशी की हसरत न मिटी,
सूरत के बदल जाने से सूरत न मिटी।
ग़म लाख ग़लत किया मगर फिर ग़म था,
इन्कार-ए-हक़ीक़त से हक़ीक़त न मिटी।

लेकिन अब वेदना को जीवित और स्थायी बनाये रखने के लिए नयी इच्छाएं पैदा करना चाहते हैं ताकि प्रेम का कारोबार चलता रहे :

ग़म-ए-शोरीदगी-ए-इश्क़[1] की तकमील भी कर,
रंज-ए-नाकामी-ए-दिल के लिए अर्मान भी ला।
हर लम्हा-ए-हयात रहा वक़्फ़-ए-कार-ए-शौक़,
मरने की उम्र भर मुझे फ़ुर्सत नहीं रही।
सुबक सरी है तेरे इश्क़ से सुबक दोशी,
बला-ए-जान है वो दिल जो बला-ए-जां न हुआ।

इस प्रकार फ़ानी की शायरी में चिंतन के एक नये संसार की सृष्टि होती है। जीवन के अनुभव वही रहते हैं उनका बहिरंग बदल जाता है। प्रेम का आवेग व्यर्थता बोध को समाप्त कर देता है सौंदर्य का साक्षात्कार और मिलन की इच्छा जीवन को सार्थक बनाती है। फ़ानी का प्रेम संकुचित नहीं उन्मुक्त और स्वच्छंद है। प्रेम सीमातीत है। वह पूर्णता की ओर बढ़ता रहता है। लेकिन सदैव असफल रहता है यहाँ तक कि संयोग में भी वियोग की आकांक्षाएं विद्यमान रहती हैं :

टूटा न हमसे रिश्ता-ए-रस्म-ए-हिजाब-ए-शौक़,
छूटा न हमसे हिज्र का दामन विसाल में।

प्रेम के रहते हुए नित्यता की संभावनाएं भी उजागर होती हैं। वेदना, हृदय

(1) प्रेम का उन्माद

और ब्रह्म ज्योति में सामरस्य पैदा करने के लिए फ़ानी ने बड़े ही रोचक अंदाज़ में आंतरिक और बाह्य जगत के आपसी सम्बन्धों को उजागर किया है :

ग़म राज़ है उनकी तजल्ली[1] का आलम में बनकर आम हुआ,
दिल नाम है उनकी तजल्ली का जो राज़ रही आलम न हुई।

जब मन और ईश्वर के दर्शन का भेद मिट जाता है तो प्रेम नित्य हो जाता है :

जल्वा-ओ-दिल में फ़र्क नहीं जलवे ही को अब दिल कहते हैं,
यानी इश्क़ की हस्ती का आगाज़ तो है अंजाम नहीं।

फ़ानी के अनुसार नित्यता जीवन का प्राप्तव्य है और इसे प्रेम के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। सौन्दर्य स्वयं में पूर्ण और अक्षय है। सृष्टि के कण-कण में उसकी ज्योति का प्रतिबिम्ब है। प्रेम में हर सांस नयी प्रतीत होती है, प्रेम-पथिक की यात्रा कभी पूरी नहीं होती। इस स्थिति से प्रेम में चिरंतनता का भाव उपजता है। अतएव फ़ानी कहते हैं :

हुस्न है जाविदान-ए-बेआगाज़[2],
इश्क़ आगाज़-ए-जाविदां अंजाम।

कला और शैली

फ़ानी एक चिंतक शायर होने के साथ-साथ बड़े कलाकार भी थे। शायराना आर्ट की खूबी यह है कि उसमें अंतर्वस्तु, और शिल्प में कोई फाँक नज़र न आये। यह गुण फ़ारसी में अमीर खुसरो और उर्दू में मीर तक़ी 'मीर' के कलाम में विद्यमान है। फ़ानी को भी इन्हीं शायरों की पंक्ति में जगह दी जा सकती है।

फ़ानी की शायरी का अपना एक ख़ास मिज़ाज है। ग़ज़ल के तमाम उस्तादों में उनकी आवाज़ अलग पहचानी जाती है। कला में निजता सिर्फ़ ख़्यालों से पैदा नहीं होती। शायरी के रंग में शैली और शिल्प की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

फ़ानी ने ग़ज़ल की भाषा को अभिव्यक्ति की नयी क्षमता प्रदान की। अपने विशिष्ट सोच के ज़रिए उन्होंने ग़ज़ल के पारम्परिक प्रतीकों को नयी अर्थवत्ता दी। और उनके माध्यम से जीवन की नाशवानता, क्षणभंगुरता, नियतिवाद, अस्तित्व की पीड़ा, उन्मुक्तता और नित्यता की इच्छा और प्रेम की पीर को प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी।

---

(1) ज्योति, प्रकाश (2) अनादि अनश्वर

'बर्क़' और 'आशियां' के घिसे-पिटे प्रतीकों को लीजिए और देखिए कि फ़ानी ने उन्हें किस तरह नया जीवन प्रदान किया है। 'बर्क़' कहीं सौंदर्य का प्रकाश है, कहीं भाग्य का अत्याचारी हाथ है और कहीं अटल मृत्यु है :

अल्लाह ! ये बिजलियाँ न काम आयेंगी,
आंधी ही से क्यूं हो आशियाना बर्बाद।

फ़ानी ने इस शे'र में जिंदगी की कशमकश का चित्र खींचा है। बिजली पल भर में आशियाने को जलाकर भस्म कर देती है और अटल मृत्यु की कैफ़ियत रखती है। इसकी तुलना में आँधी के झक्कड़ आशियाने को धीरे-धीरे बर्बाद करते हैं। आनन-फानन जल जाने की अपेक्षा तिल-तिल कर बर्बाद होने की स्थिति अधिक यातना प्रद होती है। 'आशियां' जीवन और आकांक्षा का प्रतीक है। दूसरे मिसरे में भाग्य की नियति के साथ जीवन बिताने का भाव समाहित कर दिया है 'बर्क़' और 'आशियाने' के अलावा उपवन से सम्बंधित क़फ़स, सैयाद, बहार, ख़िज़ाँ आदि प्रतीक भी फ़ानी के यहाँ मात्र अलंकार के रूप में प्रयुक्त नहीं हुए हैं बल्कि अर्थ का नया संसार बसाते हैं :

पलट-पलट के क़फ़स ही की सिम्त जाता हूँ,
किसी ने राह बताई न आशियाने की।

कल तक यही गुलशन था, सैयाद भी, बिजली भी,
दुनिया ही बदल दी है तामीर-ए-नशेमन ने।

बहार-नज़-ए-तग़ाफ़ुल हुई ख़िज़ां ठहरी,
ख़िज़ां शहीद-ए-तबस्सुम हुई बहार हुई।

फ़ानी के यहाँ 'क़त्ल' और इससे सम्बन्धित शब्दों का भी प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है, जिनके माध्यम से उन्होंने जीवन की वेदना विषयक अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है :

दाद-ए-मज़लूम निगाही थी तो ले लेने दे,
ठहर ऐ मौत कि क़ातिल को पशेमां कर लें।

यहाँ 'क़ातिल' खुदा को प्रतीकित करता है। 'क़त्ल' का अर्थ इंसान का क़त्ल नहीं बल्कि तमन्नाओं का क़त्ल है और दिल से तमन्नाओं और आरज़ूओं का मिट जाना मौत है, मौत निराशा है, स्वीकार है और तमाम निश्चयों का अंत है। मौत के प्रति स्वीकार का भाव होने पर वह 'मज़लूम निगाही' बाक़ी नहीं रहती जिसे देखकर क़ातिल पशेमान हो जाये :

ये कूचा-ए-क़ातिल है आबाद ही रहता है,
इक ख़ाकनशीं उट्ठा, इक ख़ाकनशीं आया।

इस शे'र में प्रेमी का ज़िक्र आत्मीयता पूर्ण स्वर में किया गया है। आकांक्षाओं का एक जादू है जो 'ख़ाकनशीनों' को मन-प्राण न्योछावर करने के लिए 'कूचा-ए-क़ातिल' में ले आता है। दुनिया कूचा-ए-क़ातिल है। क़त्ल से आशय मरना और नष्ट हो जाना ही नहीं है। इच्छाओं, आकांक्षाओं और संकल्पों का नष्ट हो जाना भी क़त्ल है; इन संकेतों के बाद शे'र की और अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं रह जाती। क़त्ल से सम्बन्धित दो-एक शे'र और देखिए—

तह-ए-खंजर भी जो बिस्मिल नहीं होने पाये,
मर के शर्मिंदा-ए-क़ातिल नहीं होने पाये।
रग-रग में अब अंदाज़-ए-बिस्मिल नज़र आता है,
हर साँस के पर्दे में क़ातिल नज़र आता है।
ख़ुद मसीहा ख़ुद ही क़ातिल हैं तो वो भी क्या करें,
ज़ख़्म-ए-दिल पैदा करें या ज़ख़्म-ए-दिल अच्छा करें।

ग़ालिब की तरह फ़ानी की शायरी में भी 'आईने' के प्रतीक का बहुलता के साथ प्रयोग हुआ है इस प्रतीक के बहुत से अर्थ स्तर हैं और आज भी नये अर्थ स्तरों की संभावनाएँ ख़त्म नहीं हुई हैं। फ़ानी ने विभिन्न अर्थ स्तरों को समेट कर एक सघन प्रतीक का रूप दे दिया है। अपने शे'रों में उन्होंने 'आईने' का एक रूपक बाँधा है जिसके माध्यम से तसव्वुफ़ के विभिन्न पक्षों पर रोशनी डाली जाती है। द्वैत, अद्वैत, तत्त्वज्ञान और पाप-पुण्य आदि की व्याख्या हेतु भी इस रूपक से काम लिया गया है। परम सत्ता के मूल गुणों में से एक ज्ञान है। इसका सम्बन्ध प्रज्ञा-चक्षुओं से है। समूची सृष्टि स्रष्टा का एक आदिम अनुभव है। सृष्टि को ईश्वर का सम्पूर्ण नेत्र कहा गया है। परम सत्ता क्योंकि सर्व विद्यमान है इसलिए सृष्टि कोई बाह्य कर्म नहीं हैं यह दर्शाने के लिए सृष्टि रूपी सम्पूर्ण नेत्र अर्थात् ब्रह्म की अनुभूति की उपमा 'आईने' से दी जाती है। ये रूपहीन आईने ब्रह्म की ज्योति से आकार पाते हैं। वे अपनी क्षमताओं के अनुरूप आकार ग्रहण करते हैं। कोई आईना ऐसा नहीं जो पूर्ण हो। आईनों में जो तिरछापन या कमी होती है वही पाप है। फ़ानी ने नियति और नाशवानता के भावों और सत्य की खोज के मार्ग में होने वाले अनुभवों तथा प्रेम प्रसंगों की अभिव्यक्ति के लिए इस रूपक का भरपूर प्रयोग किया है। कुछ शे'र द्रष्टव्य हैं :

ग़रज़-ए-नाज़ राज़ है कसरत-ए-मजाज़ का,
आईने से लग गये परतो[1] जमाल[2] के।

---
(1) आभा, प्रतिबिम्ब (2) सुंदरता

हैरत ने मुझे तेरा आईना बनाया है,
अब तू मुझे देखा कर ऐ जल्वा-ए-जानांनां।

जौहर-ए-आईना दिल है वो तस्वीर है तू,
दिल वो आईना कि तू देख के हैराँ हो जाये।

दाद-ए-खुदनुमाई दे वहदत तमन्ना से,
आईना तलब फ़र्मा कसरत-ए-तमाशा है।

हर आईना है दावत-ए-सई-ए-नज़र[1] मुझे,
हर सई ऐतबार-ए-तमाशा लिए हुए।

मता-ए-जल्वा[2] तहय्युर[3] है मुझको सक्ता है,
दिल आईना है कि मुँह आईने का तकता है।

काश आईना हाथ से रखकर,
तुम मेरे हाल पर नज़र करते।

इसी प्रकार फ़ानी ने 'दश्त व सहरा', मौज व 'साहिल' आदि से सम्बन्धित तथा अन्य प्रतीकों का भी रचनात्मक प्रयोग किया है। निम्नांकित शे'रों में इन प्रतीकों के प्रयोग देखे जा सकते हैं :

मौज ने डूबने वालों को बहुत कुछ पलटा,
रुख़ मगर जानिब-ए-साहिल नहीं होने पाते।

क्या हौसला आज़मा है तूफ़ान-ए-हयात,
बढ़ता है कोई झिझक रहा है कोई।

ख़बर-ए-काफ़िला-ए-गुमशुदा किस से पूछूँ,
इक बगूला भी न ख़ाक-ए-रह-ए-मंजिल से उठा।

नहीं मालूम राह-ए-शौक़ की है भी कोई मंज़िल,
जहाँ थक कर नज़र ठहरे वहीं मालूम होती है।

जौक़-ए-वहशत[4] नो-ब-नो ज़िंदां-ब-ज़िंदां[5] चाहिए,
जब गुलिस्तां चाहिए था अब बयाबां चाहिए।

सहरा का इज्तहाद[6] है जर्रे की हर नमूद[7],
ज़र्रे का ऐतबार है सहरा कहें जिसे।

---

(1) नज़र की दौड़-धूप (2) दर्शन रूपी संपत्ति (3) आश्चर्य
(4) एकांत को पाने की अभिरुचि (5) कारागार-प्रति-कारागार (6) रास्ता ढूँढना
(7) उदित होना, प्रकट होना।

जल्वा-ए-इश्क़ हक़ीक़त थी हुस्न-ए-मजाज़ बहाना था,
शम्अ जिसे हम समझे थे शम्अ न थी परवाना था।

ये तमाम प्रतीक फ़ानी की शायरी में अधिकांशतः नये अर्थायामों और संदर्भों के साथ व्यवहृत हुए हैं तथा भाव और विचार के एक नये संसार से हमारा परिचय कराते हैं।

प्रतीकों के अलावा फ़ानी ने आप्त विचारों से भी काम लिया है। दर्शन, तसव्वुफ़ और कुरान के जातीय और पारिभाषिक शब्दों का भी उन्होंने निःसंकोच भाव से व्यवहार किया है और उन्हें अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द यहाँ दिये जा रहे हैं :

हक़, बातिल, हक़ीक़त, मजाज़, जल्वा, तजल्ली, जलाल, जमाल, जब्र, अख़्तियार, अदम, वजूद, नमूद, ज़हूर, हुजूरी, तस्लीम, रज़ा, मुशय्यत, राज़, इसरार, वहदत, कसरत, निहां, अयां, ऐतबार, मासिबा, तअय्युनात, ऐन, यक़ी, मस्लक, होश, ख़ुदी, बेख़ुदी, अस्ल, जौहर, आलम, हिजाब और इर्फ़ान आदि।

फ़ानी की काव्य-भाषा में इन शब्दों का प्रयोग सामान्य और प्रचलित अर्थ से अलग हटकर किया गया है, जिनकी अर्थवत्ता फ़ानी के भाव-बोध को जानने के बाद ही उजागर हो सकती हैं; मिसाल के लिए फ़ानी ने जीवन (हस्ती) के लिए 'होश' पारिभाषिक शब्द का व्यवहार किया है। होश अपने होने का अहसास है जो ग़ैरत पैदा करता है और व्यक्ति को अस्तित्व की पीड़ा में डुबोता हैं अब ये शे'र देखिए :

होश-ए-हस्ती से तो बेगाना बनाया होता,
काश तूने मुझे दीवाना बनाया होता।

मेरा वजूद कुफ़्र, मेरी ज़िंदगी गुनाह,
हस्ती को होश, होश को लाज़िम ख़ुदी हुई।

वहशत-ए-दिल से फिरना है अपने ख़ुदा से फिर जाना,
दीवाने ये होश नहीं ये तो होश परस्ती है।

वो है मुख़्तार सज़ा दे कि जज़ा दे 'फ़ानी',
दो घड़ी होश में आने के गुनहगार हैं हम।

सांकेतिकता और शब्द-लाघव ग़ज़ल की कला के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। ग़ज़ल में विस्तार की गुंजायश नहीं होती। किसी ख़याल या अहसास को दो मिसरों में पेश कर देना होता है। कम से कम शब्दों में व्यापक भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए शायर लाघव और सूक्ष्मीकरण की विधि अपनाता है। वह अपने कथन

का आधा भाग छोड़ देता है और इसके स्थान पर एक ऐसे संकेत का प्रयोग करता है, जिसके द्वारा पाठक या श्रोता का मन उस छूटे हुए भाग तक पहुँच जाता है और शायर के आशय को समझ लेता है। प्रतीकों और अंतर्कथाओं से भी शब्द-लाघव का काम लिया जाता है। फ़ानी ने बड़ी कलात्मकता के साथ इन तमाम विधियों को अपनाया है। शब्द-लाघव और प्रतीकों के कुछ उदाहरण हम देख चुके हैं। शब्दों के विपर्यय और पुनरावृत्ति से भी एक विशेष प्रकार की सांकेतिकता पैदा होती है। फ़ानी ने इस विधि का इतना अधिक व्यवहार किया है कि यह उनकी शैली की पहचान बन गई है। वे शे'र में कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हैं और उनकी पुनरावृत्ति से भावों के आश्चर्यलोक की सृष्टि करते हैं। मिसाल के तौर पर यह शे'र :

हम हैं उसके ख़याल की तस्वीर,
जिसकी तस्वीर है ख़याल अपना।

इस शे'र में 'ख़याल' और 'तस्वीर' शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। इस तरह कि उनका क्रम बदल दिया गया है। पहले मिसरे का भावार्थ यह है कि हम खुदा के ख़याल में बनी हुई एक तस्वीर हैं। ईश्वर की सत्ता हर वस्तु को घेरे हुए है। यह घेरा मानसिक भी है और दैहिक भी। क्योंकि हम ऐसी तस्वीर नहीं हैं जो ख़याल के बाहर बनी हुई हो और जिसे कल्पना के द्वारा ख़याल में लाया जाये। यह तस्वीर तो ख़याल ही में बनी हुई है जिसका ख़याल के बाहर कोई अस्तित्व नहीं है। दूसरे मिसरे में 'तस्वीर' का शब्द भ्रम पैदा करता है। वह भ्रम यह है कि हमारे भावों में ईश्वर की सत्ता की कल्पना विद्यमान रहती है। शब्दों की व्यवस्था से जो वाक्य बना है, उससे यह भाव प्रकट नहीं होता। 'हमारा ख़याल जिसकी तस्वीर है' इससे बात कुछ स्पष्ट नहीं होती। जब हम तस्वीर शब्द पर ध्यानपूर्वक विचार करते हैं तो उसके दूसरे अर्थ सामने आते हैं। तस्वीर हू-ब-हू मिसाल को भी कहते हैं। इसका अर्थ अब इस प्रकार खुलता है कि जिस तरह हम अपने ख़याल में कोई तस्वीर बनाते हैं उसी तरह ईश्वर ने अपने ख़याल में तस्वीर बनाई है। हमारा अस्तित्व महज़ काल्पनिक है, वास्तविक नहीं। शब्दों की पुनरावृत्ति का एक अन्य रूप वह है जिसमें एक या एक से ज़्यादा शब्दों को उसी क्रम के साथ दोनों मिसरों में लाया जाये। जैसे :

हर शाख़ हर शजर से न थी बिजलियों को लाग,
हर शाख़ हर शजर पे मेरा आशियां न था।

प्रकट में ये दो अलग-अलग कथन हैं। बिजलियों को हर शजर (पेड़) और शाख़ से दुश्मनी नहीं थी। यानी उन्हें किसी ख़ास शजर की किसी ख़ास शाख़

से लाग था। दूसरा कथन यह है कि मेरा आशियाना हर शजर पर और हर शाख़ पर नहीं था यानी किसी ख़ास शजर की किसी ख़ास शाख़ पर मेरा आशियाना था। जब हम दो कथनों के अर्थ में पारस्परिक तारतम्य की तलाश करते हैं तो बात यूँ खुलती है कि बिजलियों को सिर्फ़ उस शाख़ और उस शजर से दुश्मनी थी, जिसे मैंने अपना आशियाना बनाया था। इस प्रकार फ़ानी के शे'रों में शब्दों की पुनरावृत्ति से एक आश्चर्यकारी रहस्य की सृष्टि होती है, जिसके उद्घाटन के बाद हम शे'र के सौंदर्य का आनन्द उठाते हैं। शब्दों की पुनरावृत्ति के स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले इन दो रूपों के अलावा और भी नमूने उनके कलाम में मिलते हैं जिनकी विस्तृत चर्चा स्वर-विधान के साथ-साथ की जायेगी।

फ़ानी की शैली की एक ओर विशेषता नाटकीयता है, जो अनुभव, चेष्टाओं और कथोपकथन के रूप में प्राप्त होती है। मिसाल के लिए एक शे'र पेश है :

देख ! दिल की ज़मीं लरज़ती है,
याद-ए-जानां ! क़दम सम्हाल अपना।

इस शे'र को पढ़ते हुए हमारा ध्यान एक चेष्टा पर केन्द्रित हो जाता है। यह चेष्टा नाटकीयता पूर्ण है। अपनी चरम-स्थिति पर पहुँचा हुआ 'याद-ए-जानां' जैसे एक व्यक्ति है, जो दिल की ज़मीन पर अपना क़दम बढ़ा रहा है। इसी क्षण दिल की ज़मीन लरज़ने लगती है। ऐसा न हो कि वह गिर पड़े। इसलिए ख़तरे से आगाह किया जा रहा है कि वह क़दम सम्हाल कर रखे। दूसरा आशय यह हो सकता है कि ख़तरा 'याद-ए-जानां' को नहीं है, दिल की ज़मीन को है। अभी याद-ए-जानां ने क़दम बढ़ाया ही है कि वह लरज़ने लगी। ऐसा न हो कि ज़लज़ला आ जाये और दिल पर क़यामत टूट पड़े। पूरा शे'र क्रियाओं से युक्त एक संवाद है।

फ़ानी के अधिकांश शे'रों में नाटकीय तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। यह नाटकीय तत्व प्रायः संवादों के रूप में दिखाई देता है। कहीं-कहीं संवाद नाटकीय क्रियाओं से युक्त नहीं हैं लेकिन ग़ौर करें तो इनमें किसी न किसी क्रिया का संकेत अवश्य मिलेगा। संवादमय भाषा को फ़ानी ने अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है। संवादमय शैली का यह तकाज़ा होता है कि शे'र को बाहर के टुकड़ों के उतार-चढ़ाव के साथ नहीं बल्कि लहजे से पैदा होने वाले अंतराल को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाये। संवादों में भी फ़ानी ने कहीं-कहीं गोपनीयता और लाघव का काम लिया है। निम्नांकित शे'रों में नाटकीयता से सम्बंधित उपर्युक्त विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं :

दो घड़ी के लिए मीज़ान-ए-अदालत[1] ठहरे,
कुछ मुझे हश्र में कहना है ख़ुदा से पहले।

दिल और हवा-ए-सिलसिला ज़ुंबानिए-निशात,
क्यूँ पास-ए-वज़अ-ए-ग़म तुझे ग़ैरत नहीं रही।

काश ! मेरी ज़ुबान से सुनते,
अब जो सुनते हो बेज़बानी से।

क्या चाहते हो मुँह से अल्लाह भी न निकले !
अर्मान-ए-दिल बक़द्र-ए-यक आह भी न निकले।

उठ ऐ निगाह-ए-शौक़ उठ मता-ए-जां लिये हुए,
वो दामन-ए-निगाह में हैं बिजलियां लिये हुए।

तर्क-ए-ग़म-ए-साहिल का हासिल नज़र आता है,
ले डूबने वाले वो साहिल नज़र आता है।

बिछ गये राह-ए-यार में काँटे !
किस को उज़्र-ए-बरहना पाई[2] है ?

तू मिरे दिल की न सुन ये आईना है इससे पूछ,
तेरे सूरत आशना दर्द आशना क्यूँ हो गये ?

फ़ानी की शैली की निजी विशेषता यह है कि वे असम्भव कथनों का प्रयोग करते हैं और अंतर्विरोधी स्थितियों का निरूपण करते हैं। फ़ानी की दृष्टि यथार्थ के विरोधाभासों पर रहती है। जीवन और जगत में फैले हुए विरोधाभासों को अपने आत्मिक अनुभवों में समेट कर वे यह ज्ञात कर लेते हैं कि ये विरोधाभास एक ही यथार्थ के दो रूप हैं। हमारा दृष्टिकोण और सोचने का ढंग यथार्थ के बारे में हमारे बोध और निष्कर्षो को बदल देता है। फ़ानी ने विरोधों को यथार्थ के उद्घाटन का ज़रिया बनाया है। वे स्पष्ट रूप से विरोधी प्रतीत होने वाली दो चीज़ों के बीच कार्य-कारण का सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। इस अभिव्यक्ति में शब्दों की उलट-फेर जादूगर का करिश्मा मालूम होती हैं जो पिटारे में एक चीज़ छुपाकर दूसरी चीज़ बरामद करता है। जादूगर की नज़र बंदी या तो रहस्य बनी रहती है या भेद खुल जाने पर व्यर्थ साबित हो जाती है। फ़ानी के शब्दों का जादू ऐसा नहीं है। रहस्योद्घाटन से पहले वे एक अचम्भा खड़ा करते हैं। फिर इस अचम्भे को और अधिक गहरा देते हैं। वे दो विरोधी स्थितियों की तुलना करते हुए अचम्भे के द्वारा भिन्नतामूलक दृश्यों की सृष्टि करते हैं। इस क्रिया के

(1) अदालत की तराजू (2) नंगे पैर रहने की आपत्ति

माध्यम से वे कभी जीवन के अनदेखे पक्षों को उजागर कर देते हैं और शास्त्र विहित कर्त्तव्यों को व्यंग्य का लक्ष्य बनाते हैं। विरोधाभास फ़ानी की मानसिकता में रच-बस गये थे, इसका अंदाज़ा निम्नांकित शे'रों से लगाया जा सकता है :

कैफ़ीयत-ए-ज़हूर फ़ना[1] के सिवा नहीं,
हस्ती की इस्तिलाह[2] में दुनिया कहें जिसे।

रोज़-ए-जज़ा गिला तो शुक्र-ए-सितम ही बन पड़ा,
हाय कि दिल के दर्द ने दर्द को दिल बना दिया।

निगाह-ए-शौक़ के दम तक थीं आँखें,
अब आँखें यादगारें हैं नज़र की।

अहद-ए-जवानी[3] ख़त्म हुआ अब मरते हैं न जीते हैं,
हम भी जीते थे जब तक मर जाने का ज़माना था।

अब विरोधी कथनों के प्रयोग के कुछ नमूने देखिए :

मरते ही बन आती है न जीते ही बन आई,
मारा मुझे क़ातिल की मसीहा नफ़सी ने।

बख़्श दे जब्र-ए-कुल के सदक़े में,
हर गुनह मेरी बेगुनाही का।

इज़्ज़त-ए-रुस्वाई भी कहीं तदबीर से हासिल होती है,
हैफ़ है उसकी क़िस्मत पर जो इश्क़ में रुस्वा हो न सका।

ख़िताब-ए-रोज़-ए-हश्र की सज़ा-ए-बाज़गश्त हूँ,
जवाब-ए-बेसवाल हूँ, सवाल-ए-बे जवाब का।

जल्वा तेरा तिलिस्म-ए-हिजाबात-ए-नूर है,
जो जिस क़दर क़रीब है उतना ही दूर है।

शैली या रंग की एक विशेषता ध्वन्यात्मक एकता है। जिसका निर्माण शब्दों की व्यवस्था, लहजे और बहरों के प्रयोग से होता है। किसी शायर के कलाम की ध्वन्यात्मक एकता के बारे में समग्र राय देना न तो सम्भव है और न उचित ही है। हर काव्य-रचना में एक ध्वन्यात्मक एकता होती है जो उसे अन्य रचनाओं से अलग करती है। लेकिन यह बात है कि शायर की अधिकांश रचनाओं में कुछ सामान्य बातें ज़रूरी होती हैं जो उनमें समानता पैदा करती हैं।

---

(1) मृत्यु के प्रकट हो जाने का भाव (2) पारिभाषिक शब्दावली
(3) यौवन का समय

फ़ानी की काव्य-भाषा न तो 'दाग़' की ग़ज़लों की-सी सादा और ख़ालिस उर्दू है और न 'ग़ालिब' के आरम्भिक दौर के कलाम की तरह फ़ारसी निष्ठ भांषा है। उन्होंने भाषा में फ़ारसी तरकीबों (समस्त पदों) का प्रयोग किया है। लेकिन दीर्घ समस्त पदों से प्रायः बचाव किया है।

ध्वन्यात्मक अन्विति ध्वनियों (स्वर-व्यंजन) पर आधारित होती है। हर वर्ण उच्चारण की दृष्टि से अपनी विशिष्टता रखता है। फ़ानी के कलाम में विभिन्न वर्णों की सानुरूपता का अध्ययन करने के बाद पता चलता है कि निम्न तालिका में दर्ज वर्णों की ध्वन्यात्मक अन्विति में प्रमुख भूमिका रही है। पुनरावृत्ति के अनुसार इन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया गया है :

वर्णों के उच्चारण-स्थान की तालिका

वर्ग	वर्ण	उच्चारण-स्थान	उच्चारण-प्रक्रिया
(क)	हे (ह)	कंठ-स्थान	सफ़ीरी (जिसके उच्चारण में साँस मुँह से रगड़ के साथ निकलती है।)
	काफ-क	कंठ-स्थान (जिसके उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग तालु से लग जाता है)	बंदिशी (जिसके उच्चारण में साँस मुँह के किसी भाग में रुककर झटके के साथ निकले।)
	रे (र)	मूर्धा (जिसके उच्चारण में जिह्वा की नोक ऊपर के मसूढ़ों या दांतों के पीछे लगती है।)	इर्तआशी (जिसके उच्चारण में जिह्वा की नोक में कम्पन होता है।)
(ख)	नून (न)	दंत्य	बंदिशी/उफ़की (साँस नाक के मार्ग से निकलती है।)
	मीम (म)	ओष्ठ-स्थान (इसके उच्चारण में दोनों ओठ खुलते हैं।)	बंदिशी/उफ़की
	ते (त)	दंत्य (इसके उच्चारण में जिह्वा की नोक ऊपर के दांतों से टकराती है।)	बंदिशी
	दाल (द)	दंत्य	बंदिशी

(ग)	बे (ब)	ओष्ठय	बंदिशी
	सीन (स)	दंत्य	सफ़ीरी
	लाम (ल)	दंत्य	पहलवी (इसके उच्चारण में जिह्वा की नोक ऊपर के मसूढ़ों से सट जाती है और साँस दोनों पहलुओं से निकलती है।)
	जीम (ज)	तालव्य (जिसके उच्चारण में जिह्वा का अगला भाग तालु से मिलता है।)	बंदिशी

फ़ानी के अधिकांश शे'रों में उपर्युक्त वर्णों का प्रयोग बहुतायत के साथ मिलेगा। उच्चारण की दृष्टि से दंत्य और ओष्ठ्य वर्णों के प्रचुर प्रयोग के बावजूद फ़ानी के शे'रों के प्रवाह में कमी नहीं आई है। इसका कारण यह है कि दंत्य और ओष्ठ्य वर्ण आम तौर पर स्वरों से पहले आये हैं। हल (साकिन) के रूप में इनका प्रयोग कम हुआ है। दंत्य-ओष्ठ्य वर्णों को जहाँ हल (साकिन) के रूप में अधिक प्रयुक्त किया गया है, वहाँ इनकी व्यवस्था से एक विशेष लहजा पैदा हुआ है। स्वरों के गतिरोध और वाक्य के आंतरिक प्रवाह में संगति पैदा हो गयी है।

जैसे –

मयख़ाना-ए-आलम में है हलचल 'फ़ानी',
पैमाना मगर छलक रहा है कोई।

क़ाफ़िए में 'क' वर्ण से छलकने का भाव उभरता है।

वर्णों को स्वरतंत्रियों के कम्पन की कमी-बेशी के अनुसार श्रुत और अश्रुत दो भागों में बाँटा जाता है। श्रुत वर्ण साफ़ सुनाई देते हैं और अश्रुत वर्णों में फुसफुसाहट की विशेषता होती है। उपर्युक्त अधिकता के साथ प्रयोग में लाये गये वर्णों में 'हे'/'काफ़'/'ते' और 'सीन' आदि अश्रुत हैं। यद्यपि सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाले 'हे' और 'काफ़' वर्ण अश्रुत हैं लेकिन कुल मिलाकर श्रुत वर्णों की अनुरूपता पचास प्रतिशत से अधिक है। स्वरों को भी शामिल कर लिया जाये तो श्रुत स्वर तीन चौथाई से अधिक हो जायेंगे। फ़ानी की शायरी में जहाँ श्रुत और अश्रुत स्वरों का विधान शायर के भावों से एकात्म हो गया है। मिसाल के तौर पर निम्नांकित शे'रों में 'ह' और 'छ' अश्रुत वर्णों से ठंडी आह और कानाफूँसी का भाव प्रकट होता है –

दिल-ए-फ़ानी की तबाही को न पूछ,
अलम-ए-लामुतनाही[1] को न पूछ।
हुस्न-ए-तदबीर न रुस्वा हो जाये,
राज़-ए-तकदीर-ए-इलाही को न पूछ।

शे'र के रचाव में स्वरों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उर्दू भाषा में तीन ह्रस्व स्वर हैं जिन्हें हर्कात (ज़बर, ज़ेर और पेश) कहा जाता है। दीर्घ स्वरों की संख्या सात है – ई, ए, ऐ, ऊ, ओ, औ और आ। हर बहर में दीर्घ स्वरों के प्रयोग की एक निश्चित गुंजायश होती है। जैसे बहर-ए-हजज़ कामिल के एक मिसरे (मफ़ाईलुन 4 बार) में बारह दीर्घ स्वर लाये जा सकते हैं। शायर को स्वतंत्रता है कि वह दीर्घ स्वर की जगह ह्रस्व स्वर और साकिन का प्रयोग कर सकता है अर्थात् वह एक गुरू (S) के स्थान पर दो लघु (।।) का प्रयोग करे। जैसे 'का' के बजाय 'कब'। दीर्घ स्वर जितने अधिक होंगे, शे'र में उतना ही प्रवाह बढ़ जायेगा। 'ग़ालिब' की तुलना में 'मीर' के कलाम में अधिक प्रवाहमयता होने का यही कारण है। फ़ानी के यहाँ बहरों में आधे या तीन चौथाई दीर्घ स्वर मिलते हैं। इसी कारण उनके शे'र प्रवाहपूर्ण हैं। बहुत कम शे'र ऐसे मिलेंगे जिनके अदा करने में तकलीफ़ महसूस हो।

फ़ानी के शे'रों में संगीतमयता की विशेषता स्वरों और व्यंजनों की साभिप्राय पुनरावृत्ति से पैदा होती है। ग़ज़ल को संगीतमय बनाने में रदीफ़ और क़ाफ़िया की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं क्योंकि उनके शामिल करने से स्वरों की आवृत्ति बार-बार होती है। फ़ानी की शैली का एक महत्त्वपूर्ण तत्व शब्दों की जादू भरी पुनरावृत्ति है जिससे वे अर्थ का जादू पैदा करते हैं। इसके परिणामस्वरूप शे'र में स्वरों का आरोह-अवरोह पैदा हो जाता है और संगीत की सृष्टि हो जाती है। शब्दों की पुनरावृत्ति भी विशेष नियम और अनुशासन के तहत होती है। काव्यशास्त्र में इन नियमों को अलंकार कहा जाता है। इसके अलावा शब्द के एक खंड और स्वतंत्र रूप से स्वरों की पुनरावृत्ति भी फ़ानी की काव्य-भाषा का एक गुण है। निम्नांकित शे'रों में शब्दों और स्वरों की पुनरावृत्ति देखिए :

तूने सब अपने काम बिगड़ कर बना लिये,
मेरी वफ़ा वो काम जो बनकर बिगड़ गया।
दिल का उजड़ना सहल[2] सही बसना सहल नहीं ज़ालिम
बस्ती बसना खेल नहीं है बसते-बसते बस्ती है।

---

(1) असीम, अपार (2) सहज, सरल

मंज़िल-ए-इश्क़ पे तनहा पहुँचे कोई तमन्ना साथ न थी,
थक-थक कर उस राह में आख़िर इक-इक साथी छूट गया।

सूर[1]-ओ-मंसूर[2]-ओ-तूर[3] अरे तौबा,
एक है तेरी बात का अंदाज़ !

उम्मीद-ए-मर्ग[4] है बाक़ी तो नाउम्मीद नहीं,
कि अपनी वज़अ के उम्मीदवार हम भी हैं।

हर लम्हा-ए-हयात है बेगाना-ए-हयात,
फ़ानी हयात ही से इबारत अदम न हो।

उम्मीद के दम से है उम्मीद के दम तक है,
अर्बाब-ए-तमन्ना[5] पर अहसान-ए-दिल आज़ारी।

तर्क-ए-तदबीर[6] को भी देख लिया,
ये भी तदबीर कारगर न हुई।

इज्ज़[7] इधर, उधर गुरूर दोनों ग़यूर[8] से ग़यूर,
दामन-ए-मुद्दआ से दूर दस्त-ए-सवाल रह न जाये।

---

(1) वह तुरही जो कयामत के दिन हज़रत इस्राफ़ील फूँकेंगे
(2) अनलहक़ कहने वाले वली (3) वह पर्वत जिस पर ईसा ने खुदा का जल्वा देखा था
(4) मृत्यु की आशा (5) तमन्ना के मालिक
(6) उपाय को त्यागना (7) कमज़ोरी, खुशामद (8) लज्जवान

ग़ज़लें

(चुने हुए शे'र)

मुझे बुला के यहाँ आप छुप गया कोई,
वो मेहमां हूँ जिसे मेज़बां नहीं मिलता।

शोबदे आँखों के हमने ऐसे कितने देखे हैं,
आँख खुली तो दुनिया थी, बंद हुई अफ़साना था।

तूने करम किया तो ब उन्वान-ए-रंज-ओ-ज़ीस्त[1],
ग़म भी मुझे दिया तो ग़म-ए-जाविदां न था।

इश्क़ और मायूसियां ! मायूसियां कहने को हैं,
अहद-ए-तर्क-ए-आरज़ू[2] खुद आरज़ूमंदाना था।

मौत हस्ती पे वो तुहमत थी कि आसान न थी,
ज़िंदगी मुझ पे वो इल्ज़ाम कि मुश्किल से उठा।

तुम जिसे दर से उठा देते थे,
आज दुनिया से वो नाकाम उठा।

'फ़ानी' दवा-ए-दर्द-ए-जगर ज़हर तो नहीं,
क्यूँ हाथ कांपता है मिरे चारासाज़ का।

ख़िताब-ए-रोज़-ए-हश्र की सदा-ए-बाजगश्त[3] हूँ,
जवाब-ए-बेसवाल हूँ सवाल-ए-बेजवाब का।

किया सवाल तो आवाज़-ए-बाज़गश्त आई,
जवाब मुझसे तलब है मिरे सवालों का।

तअय्युनात[4] की हद से गुज़र रही है निगाह,
बस अब खुदा ही खुदा है निगाह वालों का।

---

(1) जीवन की वेदना के रूप में
(2) इच्छाओं के त्याग की प्रतिज्ञा
(3) अनुगूँज
(4) निश्चितताएं

नाम बदनाम है नाहक़ शब-ए-तनहाई का,
वो भी इक रुख़ है तिरी अंजुमनआराई का।

बख़्श दे जब्र-ए-कुल के सदक़े में,
हर गुनह मेरी बेगुनाही का।

ज़हूर-ए-जल्वा[1] को है एक ज़िंदगी दरकार,
कोई अजल की तरह दैर-अशना न मिला।
मिरी हयात है महरूम-ए-मुद्दआ[2]-ए-हयात[2],
वो रहगुज़र हूँ जिसे कोई नक़्श-ए-पा न मिला।

इश्क़ ज़िंदगी ठहरा लेकिन अब ये मुश्किल है,
ज़िंदगी से होता है अहद-ए-उस्तुवार[3] अपना।

हम हैं उसके ख़याल की तस्वीर,
जिसकी तस्वीर है ख़याल अपना।
देख दिल की ज़मीं लरज़ती है,
याद-ए-जानां क़दम सम्भाल अपना।
मौत भी तो न मिल सकी 'फ़ानी',
किससे पूरा हुआ सवाल अपना।

तुम मुझसे क्या फिरे कि क़यामत सी आ गयी,
ये क्या हुआ कि कोई किसी का नहीं रहा।
क्या-क्या गिले न थे कि इधर देखते नहीं,
देखा तो कोई देखने वाला नहीं रहा।

आईना अब नहीं देखा जाता,
मैं ब अंदाज़-ए-दिगर[4] याद आया।

बेक़रारी में अब ये होश नहीं,
किस के दर पर तुझे पुकार आया।

वादे के ये तेवर हैं कह दूँ कि यक़ीं आया,
अब इन से कोई क्यूँ कर कह दे कि नहीं आया।
काफ़िर की मुहब्बत में ईमान के लाले थे,
छुप-छुप के दुआओं में वो दुश्मन-ए-दीं आया।

---

(1) रूप का प्रकट होना, दर्शन (2) जीवन के लक्ष्य का अभिन्न साथी
(3) दृढ़ प्रतिज्ञा (4) दूसरों या दीगर लोगों की तरह

ये कूचा-ए-क़ातिल है आबाद ही रहता है,
इक ख़ाकनशीं उट्ठा इक ख़ाकनशीं आया।
फिर गोर-ए-ग़रीबां का हर ज़र्रा लरज़ उट्ठा,
'फ़ानी' कोई दिल शायद फ़िर ज़ेर-ए-ज़मीं आया।

सुनके तेरा नाम आँखें खोल देता था कोई,
आज तेरा नाम लेकर कोई ग़ाफ़िल हो गया।

शौक़ से नाकामी की बदौलत कूचा-ए-दिल ही छूट गया,
सारी उमीदें टूट गयीं दिल बैठ गया जी छूट गया।
फ़स्ल-ए-गुल आई या अजल आई क्यूँ दरे-ज़िंदां खुलता है,
क्या कोई क़ैदी और आ पहुँचा या कोई क़ैदी छूट गया।
मंज़िल-ए-इश्क़ पे तनहा पहुँचे कोई तमन्ना साथ न थी,
थक-थक कर इस राह में आख़िर इक-इक साथी छूट गया।
'फ़ानी' हम तो जीते-जी वो मैयत हैं बे गोर-ए-कफ़न,
ग़ुर्बत जिसको रास न आई और वतन भी छूट गया।

अल्लाह ये बिजलियाँ काम न आयेंगी ?
आँधी ही से क्यूँ हो आशियाँ बर्बाद।

मुमकिन नहीं है राहत-ए-दुनिया की आरज़ू,
ग़म पर गुमान-ए-राहत-ए-दुनिया किये बग़ैर।

वो पूछते हैं और कोई देता नहीं जवाब,
किसकी वफ़ा है दस्तरस-ए-इम्तहाँ से दूर।

ज़िक्र जब छिड़ गया क़यामत का,
बात पहुँची तिरी जवानी तक।

न इब्तिदा की ख़बर है न इंतहा मालूम,
रहा ये वहम् कि हम हैं सो वो भी क्या मालूम।

जो इबारत न हो तिरे ग़म से,
अहल-ए-दिल पर वो ज़िंदगी है हराम।

हर साँस के साथ जा रहा हूँ,
मैं तेरे क़रीब आ रहा हूँ।

---

(1) रक्तरंजित होने पर रोना

जिये जाने की तुहमत किससे उठती किस तरह उठती,
तिरे ग़म ने बचाई ज़िंदगी की आबरू बरसों।

थोड़ी सी देर गिर्य:-ए-ख़ूनीं[1] में और है,
बढ़ ले कुछ और दर्द तो दिल को लहू करें।

क्या अब से मौत को भी हम ज़िदगी बना लें,
क्यूँ कर तिरी खुशी को अपनी खुशी बना लें।

आदमी में कुछ नहीं आपने समो दिया,
आलम-ए-गुबार को आज़म-ए-ख़याल में।

बहला न दिल न तीरगी-ए-शाम-ए-ग़म[1] गयी,
ये जानता तो आग लगाता न घर को मैं।

तू और कहीं हम और कहीं मुमकिन जो न था वा मुमकिन है,
जब सुनते थे तो डरते थे अब पड़ती है तो सहते हैं।

ज़िंदगी जब्र है और जब्र के आसार नहीं,
हाय इस क़ैद को ज़ंजीर भी दरकार नहीं।

वो ही वो हैं मगर ज़हूर नहीं,
इस तरह दूर हैं कि दूर नहीं।
तर्क-ए-दुनिया न हो सके तो न कर,
ग़म-ए-दुनिया मगर ज़रूर नहीं।
हम न थे कल की बात है 'फ़ानी',
हम न होंगे वो दिन भी दूर नहीं।

नामेहरबानियों का गिला तुमसे किया करें,
हम भी कुछ अपने हाल पे अब मेहरबां नहीं।

मेरे लब पर कोई दुआ ही नहीं,
इस करम की कुछ इंतहा ही नहीं।
मुस्कुराये वो हाले-दिल सुन कर,
और गोया जवाब था ही नहीं।

ग़म भी गुज़श्तनी[2] है खुशी भी गुज़श्तनी,
ग़म इख़्तियार कर के जो गुज़रे तो ग़म न हो।

---

(1) दुःख भरी शाम का अंधेरा (2) बीतने वाला, नश्वर

हर लम्हा-ए-हयात है बेगाना-ए-हयात,
'फ़ानी' हयात ही से इबारत अदम न हो।

हैरत ने मुझे तेरा आईना बनाया है,
अब तू मुझे देखा कर ऐ जल्वा-ए-जानां जां।

बदला हुआ था रंग गुलों का तिरे बग़ैर,
कुछ ख़ाक सी उड़ी हुई सारे चमन में थी।

उम्मीद के दम से है उम्मीद के दम तक है,
अर्बाब-ए-तमन्ना[1] पर अहसान-ए-दिल आज़ारी[2]।

खुश हूँ कि तेरे ग़म में जीता हूँ न मरता हूँ,
जीना है होशकोशी[3] मरना है रियाकारी[4]।

राज़-ए-हस्ती की जुस्तजू में रहे,
ख़्वाब-ए-ताबीर ख़्वाब में गुज़री।
कुछ कटी हिम्मत-ए-सवाल में उम्र,
कुछ उम्मीद-ए-जवाब में गुज़री।
किस ख़राबी से ज़िंदगी 'फ़ानी',
इस जहान-ए-ख़राब में गुज़री।

इक आलम-ए-दिल है यही दुनिया यही फ़िरदौस,
हर शै नज़र आती है नज़र आई हुई सी।

निगाह-ए-शौक़ के दम तक थीं आँखें,
अब आँखें यादगारें हैं नज़र की।

पलट-पलट के क़फ़स ही सिम्त जाता हूँ,
किसी ने राह बताई न आशियाने की।

दैर में या हरम में गुज़रेगी,
उम्र तेरे ही ग़म में गुज़रेगी।
ज़िंदगी याद-ए-दोस्त है यानी,
ज़िंदगी है तो ग़म में गुज़रेगी।
बेजौक़-ए-नज़र बज़्म-ए-तमाशा न रहेगी,
मुंह फेर लिया हमने तो दुनिया न रहेगी।

---

(1) तमन्ना के मालिक (2) दिल दुखाना
(3) होशियारी, समझदारी (4) मक्कारी, धूर्तता

आती रहेगी ख़ैर अब इस ज़िंदगी को मौत,
ये तो हुआ कि मौत मेरी ज़िंदगी हुई।

'फ़ानी' मैं हूँ वो नुक़्ता-ए-मौसूम-ए-इत्तिसाल[1],
जिसमें अदम की दोनों हदें हैं मिली हुई।

कुछ नज़र कह गयी ज़ुबां न खुली,
बात उनसे हुई मगर न हुई।
तर्क-ए-तदबीर को भी देख लिया,
ये भी तदबीर कारगर न हुई।
हिज्र के भी हज़ार पहलू थे,
यूँ भी इक वज़अ[2] पर बसर न हुई।
सुबह होती नहीं हमारी शाम,
वरना किस शाम की सहर न हुई।

ग़म राज़ है उनकी तजल्ली[3] का जो आलम में बनकर आम हुआ,
दिल नाम है उनकी तजल्ली का जो राज़ रही आलम न हुई।

कहते हैं हुस्न की ही अमानत है दर्द-ए-इश्क़,
अब क्या किसी के इश्क़ का दावा करे कोई।
ख़ाली है बज़्म-ए-जौक़-ए-तलब अहल-ए-होश से,
इतना नहीं कि तेरी तमन्ना करे कोई।

मुझसे मतलब न सही काश मयस्सर हो तुझे,
हुस्न-ए-तग़य्युर[4] ही ऐ गर्दिश-ए-दौरां कोई।

कितनी तेरी जुस्तजू की लज़्जत है अज़ीज़,
रास्ता पाकर भटक रहा है कोई।

मैख़ाना - एआलम में है हलचल 'फ़ानी',
पैमाना मगर छलक रहा है कोई।

महशर में भी वो अहद-ए-वफ़ा से मुकर गये,
जिसकी खुशी भी अब वो क़यामत नहीं रही।

---

(1) मिलन–बिन्दु जो दृष्टि का भ्रम होता है। (2) रूप
(3) प्रकाश (4) परिवर्तन का सौन्दर्य

दुश्वार तो नहीं ग़म-ए-हस्ती का ख़ात्मा,
उनकी ख़ुशी नहीं है तो उनकी ख़ुशी सही।

तुम क्यों गये थे आईनाख़ाने में बेहिजाब,
अच्छा हुआ कि शर्म-ओ-शरारत में चल गयी।

ज़िंदगी की दूसरी करवट थी मौत,
ज़िंदगी करवट बदल कर रह गयी।

क्यूँ न नैरंग-ए-जुनूँ[1] पर कोई कुर्बां हो जाये,
घर वो सेहरा कि बहार आये तो ज़िंदां हो जाये।
जौहर-ए-आईना दिल है वो तस्वीर है तू,
दिल वो आईना कि तू देख के हैरां हो जाये।
ग़म वो राहत कि जिसे क़िस्मत के धनी पाते हैं,
दम वो मुश्किल कि मौत आये तो आसां हो जाये।
इश्क़ वो कुफ़्र कि ईमान है दिल वालों का,
अक़्ल-ए-मजबूर वो काफ़िर कि मुसलमां हो जाये।
मौत वो दिन भी दिखाये मुझे जिस दिन 'फ़ानी',
ज़िंदगी अपनी जफ़ाओं पे पशेमां हो जाये।

जिस सिम्त निगाह-ए-यक नगर जाये,
तो आये नज़र जिधर जाये।
कर ख़ू-ए-जफ़ा[2] न यक-ब-यक तर्क[3],
क्या जानिए मुझपे क्या गुज़र जाये।

होश रहे न दोश का फ़िक्र-ए-माल रह न जाये,
ख़िल्वत-ए-याद-ए-यार[4] कोई ख़याल रह न जाये।
ताब-ए-नज़्ज़ारा-ए-जलाल[5] हश्र में बख़्श कर मुझे,
शान-ए-जमाल भी दिखा शान-ए-जमाल रह न जाये।

ज़िंदगी बेदिलों पे तुहमत थी,
मर न जाते अगर जिये होते।
तह-ए-ख़ंजर भी जो बिस्मिल नहीं होने पाते,
मर के शर्मिंदा-ए-क़ातिल नहीं होने पाते।

---

(1) उन्माद का जादू, भ्रम
(2) सताने की आदत
(3) तोड़ना
(4) प्रेमी की याद का एकांत
(5) सौंदर्य के दर्शन का तेज

हरम-ओ-दैर की गलियों में पड़े फिरते हैं,
बज़्म-ए-रिंदां[1] में जो शामिल नहीं होने पाते।
मौज ने डूबने वालों को बहुत कुछ पलटा,
रुख़ मगर जानिब-ए-साहिल नहीं होने पाते।
तू कहाँ है कि तेरी राह में ये काबा-ओ-दैर,
नक़्श बन जाते हैं मंज़िल नहीं होने पाते।
ख़ुद तजल्ली को नहीं इज़्न-ए-हुजूरी[2] फ़ानी,
आईने उनके मुक़ाबिल नहीं होने पाते।

क़िस्सा-ए-ज़ीस्त[3] मुख़्तसर करते,
कुछ तो अपनी सी चारागर करते।
मौत की नींद सो गये बीमार,
रोज़ किस शाम की सहर करते।
काश आईना हाथ से रख कर,
तुम मिरे हाल पर नज़र करते।

कुछ बस ही न था वरना ये इल्ज़ाम न लेते,
हम तुझसे छुपा कर भी तेरा नाम न लेते।
ख़ामोश भी रहते तो शिकायत ही ठहरती,
दिल देके कहाँ तक कोई इल्ज़ाम न लेते।
तेरी ही रज़ा और थी वरना तेरे बिस्मिल,
तलवार के साये में आराम न लेते।

आईना था जो नक़्श बा दीवार हो गया,
तुम देखते मुझे तो कोई देखता मुझे।

मैंने 'फ़ानी' डूबते देखी है नब्ज़-ए-कायनात,
जब मिज़ाज-ए-यार कुछ बरहम नज़र आया मुझे।

जिस क़दर चाहिए जलवा को फ़रावानी दे,
हाँ नज़र दे तो मुझे फ़ुर्सत-ए-हैरानी दे।

ख़लिश-ए-दर्द से कम माया-ए-ग़म[4] हैं मेहरूम,
जुंबिश-ए-हिर्मा[5] को ख़ुदा इज़्ज़त-ए-अर्ज़ानी दे।

---

(1) शराब पीने वालों की महफ़िल (2) प्रत्यक्ष होने का आदेश (3) जीवन की कथा
(4) दु:ख की सामर्थ्य से रहित (5) दुर्भाग्य का एक स्थान से हटना

अपने दीवाने पर इत्माम-ए-करम कर या रब,
दरो-दीवार दिये अब उन्हें वीरानी दे।

कैफ़ियत-ए-ज़हूर-ए-फ़ना के सिवा नहीं,
हस्ती की इस्तलाह[1] में दुनिया कहें जिसे।

काश मेरी ज़बान से सुनते,
अब जो सुनते हो बेज़बानी से।

दाद-ए-खुदनुमाई वहदत-ए-तमन्ना से,
आईना तलबफ़र्मा कसरत-ए-तमाशा से।

उलट दिया ग़म-ए-इश्क़ मजाज़ ने पर्दा,
हिजाब-ए-हुस्न में कुछ राज़ थे हक़ीक़त के।

नज़र आज उनसे रह गयी मिल के,
आख़िरी कुछ पयाम थे दिल के।
तूने देखे हैं ऐ नसीम-ए-सहर[2],
कुछ फ़िदाई थे शम्मे-महफिल के।
तेज़तर जादा-ए-वफ़ा से गुज़र,
मिट रहे हैं निशान मंज़िल के।

क्यों चाहते हो मुँह से अल्लाह भी न निकले,
अर्मान-ए-दिल बक़द्र-ए-यक आह भी न निकले।
चाहूँ भी और ये ज़िद है कि चाहा उन्हीं का चाहूँ,
दिल से दुआ भी निकले दिल ख़्वाह भी न निकले।
हर राह से गुज़र कर दिल की तरफ़ चला हूँ,
क्या हो जो उनके घर की ये राह भी न निकले।

मौत की रस्म न थी उनकी अदा से पहले,
ज़िंदगी दर्द बनानी थी दवा से पहले।
दो घड़ी के लिए मीज़ान-ए-अदालत ठहरे,
कुछ मुझे हश्र में कहना है खुदा से पहले।

वादा फिर अब की बार करके चले,
फिर तुम उम्मीदवार करके चले।

---

(1) पारिभाषिक शब्दावली (2) प्रातःकाल की वायु

दिल को किस दिन क़रार आया था,
तुम किसे बेक़रार करके चले,
दिल पे कुछ अख़्तियार था 'फ़ानी',
दिल को बेअख़्तियार करके चले।

तौबा न करो सितम से पहले,
इतना तो करो करम से पहले।
तेरी ही ख़ुशी है आज ग़म भी,
तेरी ही ख़ुशी थी ग़म से पहले।

लब तक आ जाये ग़म-ए-हिज्र तो शिकवा हो जाये,
आप सुन लें तो अजब क्या है कि अफ़साना बने।

कल तक यही गुलशन था सैयाद भी बिजली भी,
दुनिया ही बदल दी है तामीर-ए-नशेमन[1] ने।

आईना बसद जलवा-ओ-हर जल्वा बसद रंग,
क्या-क्या न किया तेरी तमाशातलबी ने।
मरते ही बन आती है न जीते ही बन आई,
मारा मुझे क़ातिल की मसीहानफ़सी[2] ने।

उठ ऐ निगाह-ए-शौक़ उठ मता-ए-जाँ लिये हुए,
वो दामन-ए-निगाह में हैं बिजलियाँ लिये हुए।
तेरे करम से क्या समां है आलम-ए-गुनाह का,
याहियां उम्मीद की तजल्लियाँ लिये हुए।
वही हूँ मैं जो तू नहीं वही है तू जो मैं नहीं,
तेरा हरेक नाम है मेरा निशाँ लिये हुए।

देखा न अहल-ए-दिल ने किसी दिन उठा के आँख,
दुनिया गुज़र गयी ग़म-ए-दुनिया लिये हुए।

मता-ए-जल्वा[3] तहय्युर[4] है मुझको तक्ता[5] है,
दिल आईना है कि मुँह आईने का सक्ता है।
उम्मीद-ओ-बीम[6] पे है हस्ती-ए-बशर[7] मौक़ूफ़[8],
कि जाके दम पलट आता है दिन धड़कता है।

---

(1) घौंसले का निर्माण
(2) क़ातिल का हकीम की भांति व्यवहार
(3) दर्शन रूपी संपत्ति
(4) आश्चर्य
(5) मूर्च्छा, बेहोशी
(6) आशा और भय
(7) व्यक्ति का जीवन
(8) निर्भर

जल्वा-ए-रंग है नैरंग-ए-तक़ाज़ा-ए-निगाह,
कोई मजबूर-ए-तमाशा-ए-शराब आता है।

रग-रग में अब अंदाज़-ए-बिस्मिल नज़र आता है,
हर साँस के पर्दे में कातिल नज़र आता है।
वो वादा-ए-आसां पर क़ातिल नज़र आता है,
अब कार-ए-तमन्ना फिर मुश्किल नज़र आता है।
मौजों की सियासत से मायूस न हो 'फ़ानी',
गिर्दाब की हर तह में साहिल नज़र आता है।

क़तरा-क़तरा रहता है दरिया से जुदा रह सकने तक,
जो ताब-ए-जुदाई ला न सके वो क़तरा फ़ना हो जाता है।

ये उस निगाह-ए-होशरुबा की ख़ता नहीं,
दुनिया बक़द्र-ए-खराबी खराब है।

वो खुदाई हो तो हो शान-ए-तजल्ली तो नहीं,
जिस तजल्ली में निगाहों को खुदा याद रहे।

वो मश्क़-ए-ख़ू-ए-तग़ाफुल[1] फिर एक बार रहे,
बहुत दिनों मेरे मातम में सोगवार रहे।
मैं कब से मौत के इस आसरे पे जीता हूँ,
कि ज़िंदगी मेरे मरने की यादगार रहे।

गर्दिशीं जाम-ओ-सबू[2] करते रहे,
रिंद मश्क-ए-हा-ओ-हू करते रहे।
उनकी आवाज़ आ रही थी दिल के पास,
देर तक कुछ गुफ़्तगू करते रहे।
रोज़ बढ़ती ही रही इक आरजू,
रोज़ तर्क-ए-आरजू करते रहे।

मुख़्तार हूँ कि मौतरफ़-ए-जब्र-ए-दोस्त[3] हूँ,
मजबूर हूँ कि ये भी कोई अख़्तियार है।

जल्वा तेरा तिलिस्म-ए-हिजाबात-ए-नूर है,
जो जिस क़दर क़रीब है उतना ही दूर है।

---

(1) उपेक्षा की आदत का अभ्यास (2) शराब की मटकी
(3) प्रिय की कठोरता का विश्वास पात्र

तज्दीद-ए-ज़िंदगी से तो मुहालात से नहीं,
फ़ानी मगर ये उनकी मुरव्वत से दूर है।

है फ़ना आबाद-ए-ग़म एक मानी-ए-लफ़्ज़ आफ़्रीं[1],
सूरत आबाद-ए-जहाँ इक लफ़्ज़-ए-मानीख़ेज[2] है।
गो नहीं जुज़ तर्क-ए-हसरत दर्द-ए-हस्ती का इलाज,
आह वो बीमार जो आजुर्दा-ए-परहेज़[3] है।
माया-ए-इद्राक-ए-हस्ती[4] हूँ तकल्लुफ़ बरतरफ़,
ज़िंदगी मेरी दरोग़-ए-मस्लेहत आमेज़ है।

आह इस मामूरा-ए-आलम[5] की वीरानी न पूछ,
हम हैं तेरी याद है आगे खुदा का नाम है।

इश्क़-ए-जहाँ बाइस-ए-निशात नहीं है,
ख़ंदा[6]-ए-तस्वीर इंबिसात[7] नहीं है।
गिर्या[8] के आदाब के हवास है किसको,
हाय कि जब ताब-ए-एहतियात नहीं है।

दिल खूगर-ए-अंदोह[9] है क्या वस्ल से खुश हो,
हरचंद कि नाशाद नहीं शाद नहीं है।

चमन से रुख़सत-ए-'फ़ानी' क़रीब है शायद,
कुछ अब के बू-ए-कफ़न दामन-ए-बहार में हैं।

बचेगी दिल की पामाली कहाँ तक,
तजल्ली कारवाँ-दर-कारवाँ है।

तुमसे भी हो आगाह फिर अपनी भी ख़बर हो,
दीवाना तुम्हारा कोई दीवाना नहीं है।
रोने के आदाब हुआ करते हैं शायद,
ये उनकी गली है तेरा ग़मखाना नहीं है।

हासिल-ए-ख़ल्क़त[10] है तामीर-ए-जबीन-ए-सज्दा रेज़,
शान-ए-तकवीन[11]-ए-दो आलम गायत[12]-ए-यक सजदा है।

---

(1) शाबाश, मुबारकबाद (2) अर्थपूर्ण शब्द (3) पथ्य न करने वाला
(4) जीवन की सामर्थ्य (5) सृष्टि (6) प्रसन्न
(7) हर्ष (8) रोना–पीटना (9) दुःख का अभ्यस्त
(10) सृष्टि का प्राप्तव्य (11) सृष्टि की गरिमा (12) परिणाम

बिछ गये राह-ए-यार में काँटे,
किसको उज़्र-ए-बरहना पाई है।
तर्क-ए-उम्मीद बस की बात नहीं,
वरना उम्मीद कब बर बाई है।
मज़्दा जन्नत विसाल है मौत,
जिंदगी महशर-ए-जुदाई है।

महशर में उज़्र-ए-क़त्ल[1] भी है ख़ूँबहा[2] भी है,
वो एक निगाह जिसमें गिला भी हया भी है।
अच्छा यक़ीं नहीं है तो कश्ती डुबो के देख,
इक तू ही नाख़ुदा नहीं ज़ालिम ख़ुदा भी है।

दुनिया मेरी बला जाने महँगी है या सस्ती है,
मौत मिले तो मुफ़्त न लूँ हस्ती की क्या हस्ती है।
आबादी भी देखी है, वीराने भी देखे हैं,
जो उजड़े और फिर न बसे दिल वो निराली बस्ती है।
खुद जो होने का हो अदम क्या उसे होना कहते हैं,
नीस्त[3] नहीं तो हस्त[4] नहीं ये हस्ती भी क्या हस्ती है।
उज्ज़-ए-गुनाह[5] के दम तक हैं अस्मत-ए-कामिल के जल्वे,
पस्ती है तो बुलंदी है राज़-ए-बुलंदी पस्ती है।
वहशत-ए-दिल से फिरना है अपने ख़ुदा से फिर जाना,
दीवाने ये होश नहीं है ये तो होशपरस्ती है।
जग सूना है तेरे बग़ैर आँखों का क्या हाल हुआ,
तब भी दुनिया बसती थी अब भी दुनिया बसती है।
आँसू थे सो ख़ुश्क हुए जी है कि उमड़ा आता है,
दिल पे घटा सी छाई है खुलती है न बरसती है।
दिल का उजड़ना सहल सही बसना सहल नहीं ज़ालिम,
बस्ती बसना खेल नहीं बसते-बसते बसती है।
'फ़ानी' जिसमें आँसू क्या दिल के लहू का हाल न था,
हाय वो आँख अब पानी की दो बूँदों को तरसती है।

मरके टूटा है कहीं सिलसिला-ए-क़ैद-ए-हयात,
मगर इतना है कि जंजीर बदल जाती है।

(1) क़त्ल की माफ़ी (2) मृतक के वारिस को खून के एवज़ में मिलने वाली राशि
(3) नास्ति (4) अस्ति (5) गुनाहों का बढ़ना

कहते-कहते मिरा अफ़साना गिला होता है,
देखते-देखते तक़्दीर बदल जाती है।
रोज़ है दर्द-ए-मुहब्बत का निराला अंदाज़,
रोज़ दिल में तेरी तस्वीर बदल जाती है।
घर में रहता है तिरे दम से उजाला ही कुछ और,
मह-ओ-ख़ुर्शीद[1] की तन्वीर[2] बदल जाती है।

नहीं मालूम राह-ए-शौक़ में है भी कोई मंज़िल,
जहाँ थक कर नज़र ठहरे वहीं मालूम होती है।
अजब आलम है मौज-ए-वर्क़[3] के पहलू में बादल का,
तेरी उलटी हुई सी आस्तीं मालूम होती है।

तू मिरे दिल की न सुन ये आईना है इससे पूछ,
तेरी सूरत आशना दर्द आशना क्यूँ हो गये।

इक फ़साना सुन गये इक कह गये
मैं जो रोया मुस्कुरा कर रह गये।
मौत उनका मुँह ही तकती रह गयी,
जो तेरी फ़ुर्सत[4] के सदमे सह गये।
उठ गये दुनिया से 'फ़ानी' अहले ज़ौक[5],
एक हम मरने को ज़िंदा रह गये।

---

(1) चंद्रमा और सूर्य (2) आभा (3) बिजली की तरंगे
(4) विछोह (5) सुरुचि संपन्न लोग

चुनी हुई रुबाइयाँ

नाक़िस[1] है अता न ज़िंदगानी महदूद[2],
है बहर-ए-हुसूल[3] ख़ल्क़त-ए-हर मक़्सूद[4]।
'फ़ानी' जिसका हूसूल नामुमकिन,
मुमकिन नहीं दिल में उस तमन्ना वुजूद।

अब ये भी नहीं कि नाम भी लेते हैं,
दामन फ़क़त अश्कों से भिगो लेते हैं।
अब हम तिरा नाम लेकर रोते भी नहीं,
सुनते हैं तेरा नाम तो रो लेते हैं।

हस्ती फ़क़त एक दर्द-ए-मुसलसल ही नहीं,
हर ख़ल्क़-ए-जदीद है लताफ़त से क़रीं[5]।
कलियों को सबने फूल बनते देखा,
कलियाँ बनते भी फूल देखे हैं कहीं।

इक शम्अ की सौ रूप में तन्वीरें[6] हैं,
इक हर्फ़ की सौ रंग में तहरीरें हैं।
बन जाती है हर निगाह मंज़र 'फ़ानी',
जो कुछ रहा हूँ मिरी तस्वीरें हैं।

दुनिया कहीं दोज़ख़[7] है कहीं खुल्द-ए-बरीं[8],
दिल है वहीं इक शाद[9] है एक हज़ीं[10]।
ये ज़रा चमक उट्ठा वो तारीक हुआ,
जम कर न रही शुआ-ए-ख़ुर्शीद[11] कहीं।

हर शै में निगाह-ए-शौक़ पाती है तुझे,
दूरी गोया क़रीब लाती है तुझे।

---

(1) अधूरी (2) सीमित (3) प्राप्यव्य या गंतव्य की दिशा में
(4) इच्छित लक्ष्य (5) क़रीब, पास (6) आभाएं, रोशनियां
(7) नरक (8) स्वर्ग (9) प्रसन्न
(10) दु:खी (11) सूर्य की किरणें

फूलों की महक याद दिलाने वाली,
फूलों की महक याद दिलाती है तुझे।

वक़्त अपना सभी तरह गुज़र जाता है,
अच्छी कि बुरी तरह गुज़र जाता है।
जो लम्हा किसी तरह गुजरता ही नहीं,
फ़िलजुम्ला[1] किसी तरह गुज़र जाता है।

इस बाग़ में जो कली नज़र आती है,
तस्वीर-ए-फ़सुर्दगी[2] नज़र आती है।
कश्मीर में हर हसीन सूरत 'फ़ानी',
मिट्टी में मिली हुई नज़र आती है।

दिल से तेरी ही गुफ़्तगू काफ़ी है,
तुझसे तेरी ही आरज़ू काफ़ी है।
'फ़ानी' हो कि बाक़ी हो वो दुनिया हो कि ख़ुल्द[3],
दरकार नहीं कि एक तू काफ़ी है।

---

(1) थोड़ा, किसी क़दर (2) उदासी (3) स्वर्ग

फूलों की महक याद दिलाने वाली,
फूलों की महक याद दिलाती है तुझे।

वक़्त अपना सभी तरह गुज़र जाता है,
अच्छी कि बुरी तरह गुज़र जाता है।
जो लम्हा किसी तरह गुजरता ही नहीं,
फ़िलजुम्ला[1] किसी तरह गुज़र जाता है।

इस बाग़ में जो कली नज़र आती है,
तस्वीर-ए-फ़सुर्दगी[2] नज़र आती है।
कश्मीर में हर हसीन सूरत 'फ़ानी',
मिट्टी में मिली हुई नज़र आती है।

दिल से तेरी ही गुफ़्तगू काफ़ी है,
तुझसे तेरी ही आरजू काफ़ी है।
'फ़ानी' हो कि बाक़ी हो वो दुनिया हो कि खुल्द[3],
दरकार नहीं कि एक तू काफ़ी है।

---

(1) थोड़ा, किसी क़दर (2) उदासी (3) स्वर्ग